संत ज्ञानदेव
संक्षिप्त चरित्र
ज्ञानेश्वरी
— दिवाकर जोगळेकर

सन्त ज्ञानदेव

(संक्षिप्त चरित्र)

सन्त ज्ञानदेव

(संक्षिप्त चरित्र)

श्री. दिवाकर जोगलेकर
बी. ए. साहित्य रत्न,
सी. हिं. शि. सनद।

विजया दशमी शक १८८८

अनुक्रमाणिका

अपनी बात

सन्त ज्ञानदेव भागवत धर्मके ख्यातनाम प्रणेता माने जाते हैं। मराठी भाषाको साहित्यिक गौरव प्रदान करनेका श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। प्रस्तुत पुस्तिकामें राष्ट्रभाषाके माध्यमसे उन्हींका सादर चरित्र गान किया गया है।

स्वाध्याय मण्डल 'पारडी' के स्वनामधन्य महर्षि सातवलेकरजीने अपना अनमोल समय देकर प्रस्तुत पुस्तिका के लिए "निवेदन के रूपमें" आशीर्वाद देकर मुझे अनुगृहीत किया है जिसके लिए मैं उनका अतीव ऋणी हूँ।

मराठी के मूर्धन्य विद्वान प्राचार्य कृ. पां. कुलकर्णीजीने बडे प्रेम एवं आत्मीयता के साथ आमुख लिखकर मुझे उपकृत किया है। दुर्भाग्य से वे आज हमारे बीचमें नही रहे। उनकी दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी अपार कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ।

सन्त ज्ञानदेव के चरित्र को प्रस्तुत रूप देनेमे डॉ. मो. दि. पराडकरजीने जो सहयोग प्रदान किया है वह अविस्मरणीय है। उनके ऋणसे उऋण होना मेरे लिए असम्भव है।

बडौदा के माझी नरेश सयाजीराव महाराज के प्रपौत्र एवं प्रिन्ट्रान्स के जन्मदाता श्रीमान् रणजितसिंहजीने इस पुस्तक के छपवाने का सारा प्रबन्ध करके मुझे प्रोत्साहित किया है। अतएव मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

साथ साथ 'प्रिन्ट्रान्स' के मुद्रक, श्री ना. ता. सावंतजीने भी इस विषयमें जो कष्ट उठाया हैं, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

बडौदा, फाईन आर्टस् कालेज के प्रो. ना. बा. जोगलेकरजीका जिल्द आदि सजाने तथा अन्य सभी सम्बन्धित बातोंमें जो अनमोल सहाय हुआ है वह अत्यन्त सराहनीय है। इसलिए वे मेरी बधाईके पात्र हैं।

अन्तमें आशा करता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के लिए उपादेय सिद्ध होगी। पुस्तकमें शुक्लता सन्त ज्ञानदेव कीं और श्यामता मेरी !

विजयादशमी
शक १८८८
दि. २३-१०-६६

विनम्र
दिवाकर जोगलेकर

सम्मति

श्री दिवाकर जोगलेकरजी का " श्री ज्ञानदेव का संक्षिप्त चरित्र " पढनेका मौका मिला। इसके पहले श्री रामदासजी के ' मनाचे श्लोक का हिन्दो अनुवाद ' और उनके जीवनवृत्तपर प्रामाणिक पुस्तक लिखनेके कारण लेखकका नाम हिन्दी पाठकोंको पूर्ण परिचित है। प्रस्तुत पुस्तकमें आठ अध्यायोंमें लेखकने 'श्री ज्ञानदेव का संक्षिप्त चरित्र' हिन्दी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया है। इस चरित्रको प्रामाणिक रूप देनेके हेतु लेखकने जो अध्ययन एवं अध्यवसाय किया है उसका परिचय पहले दो अध्यायोंमें ही मिलता ह। मराठी कें सन्तों के प्रति प्रस्तुत ग्रन्थके रचयिताकी अपार श्रद्धाने पुस्तक के प्रभावको हृदयंगम रूप प्रदान किया है। पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रभावी है। आशा है की इसी तरह मराठीके सभी नामवर सन्तोंकें महिमामय कार्यकी जानकारी हिन्दी भाषी जनता के सामने उपस्थित करके जोगलेकरजी हिन्दीका गौरव बढानेमें सचेष्ट रहेंगे।

दशहरा
११ अक्तूबर १९५९.

डॉ. मो. दि. पराडकर
एम. ए. पी. एच. डी.
(रा. ना. रुइया कोलेज बम्बई.)

ॐ

नि वे द न

सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराजजी का

संक्षिप्त जीवन चरित्र।

इस सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराजजीके सक्षिप्त जीवन चरित्रको हिन्दी भाषाभाषियोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेमें मुझे बडा ही आनंद हो रहा है। यह चरित्र सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्रीका समन्वय करके तैय्यार किया है, यह इसकी विशेषता है। इस सन्त चरित्र के लेखक श्रीमान **दिवाकरराव जोगलेकरजी** हैं, जिनकी हिन्दी लेखन कृतियाँ **१ श्री समर्थ रामदास चरित्र** तथा २ समर्थ रामदास स्वामीजी के '**मनके श्लोक**' हिन्दी भाषामें सुप्रसिध्ध हुई हैं। इन्होंने ही यह ज्ञानेश्वर महाराजजीका उत्तम चरित्र लिखा है।

श्री सन्तश्रेष्ठ 'ज्ञानेश्वर' महाराज का दूसरा नाम 'ज्ञानदेव' है। श्री निवृत्तिनाथ, 'श्रीज्ञानदेव' अर्थात ज्ञानेश्वर, श्री सोपानदेव तथा इनकी बहन मुक्ताई ये चारों भाईबहनें छोटी आयुसे ही परम ज्ञानी थीं। इनका बालपन बडे कष्टमें गया था। परन्तु परम ज्ञानी होनेसे आगे इनकी मान्यता बहुत रही थी।

श्री सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराजकी 'ज्ञानेश्वरी' नामक सुप्रसिध्ध टीका श्रीमद्भगवद्गीता के ऊपर है, जो महाराष्ट्रमें तथा हिन्दी जगत् में भी प्रसिध्ध है। सुप्रसिद्ध सांप्रदायिक ब्रह्मीभूत श्री **नाना महाराज साखरे** प्रणित 'ज्ञानेश्वरी-हिन्दी-भाषा टीका' यह ग्रन्थ हिन्दी भाषानुवादक ब्रह्मविद् **मायानन्द चैतन्य** ने किया और जिसका प्रकाशन श्री त्र्यंबक हरी आवटेजीने पूना में सन १९२० में किया, जो इस टीका को देखेंगे उनको ज्ञानेश्वर महाराजकी ब्रह्मज्ञानी होनेके विषयमें जो विशेष योग्यता है, उसके विषयमें अधिक कहने की कोई आवश्यकता रहेगी नहीं।

ऐसे परमज्ञानी सन्तोंमें शिरोमणि परमश्रेष्ठ पुरुषका यह प्रामाणिक जीवन चरित्र है। इसलिए इस रचनाकी योग्यता विशेष है ! सन्तों के चरित्र सदा ही बोधप्रद होते हैं। वैसा यह चरित्र भी अत्यंत बोधप्रद तथा सन्मार्गदर्शक भी है। जो पढ़ेंगे उनको सच्चा श्रेष्ठ मार्ग स्पष्ट रीत्तिसे दीखेगा और उस श्रेष्ठ मार्गसे जो चलेंगे उनका लाभ अवश्य होगा।

सन्त शिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराजजीका चरित्र इस रुपमें हिन्दी भाषामें प्रथम वार ही प्रकाशित हो रहा है। निःसन्देह इससे हिन्दी भाषाभाषी लोग लाभ प्राप्त करेंगे।

हम हृदयसे इच्छा करते हैं कि इस सन्त चरित्रके प्रकाशनसे हिन्दी भाषा भाषी प्रभावित हों, और इससे उन ज्ञानेश्वर महाराजजीकी 'ज्ञानेश्वरी' के पास लोग अधिक आकर्षित हों, और ज्ञानेश्वर महाराजके श्रेष्ठ ज्ञानका प्रकाश हिन्दी जगत्में पडे और हिन्दी जगत् इस अद्वितीय ज्ञानसे प्रभावित हो और इस ज्ञान प्रकाशसे सबका इह परलोकमें परम कल्याण हो।

निवेदक

हस्ताक्षर (**श्री. दा. सातवळेकर**)

अध्यक्ष 'स्वाध्यायमंडळ'

पारडी, जि. सूरत

पारडी

११–१–६०

आमुख

महाराष्ट्र देश और मराठी भाषाका कितना अहोभाग्य ! सचमुच यह अपूर्व संयोग है कि श्री मुकुन्दराज जैसे मराठी उपनिषत्कार, श्री ज्ञानदेव जैसे आत्मज्ञानी और श्री नामदेव जैसे भगवानके साथ शिशु समान लाड़ प्यार करनेवाले–प्रेमी सन्तोंका योगदान मराठी भाषाको उसके आरम्भिक कालमें मिला !

उन दिनों न्यायी एवं सन्तोंको उदार आश्रय देनेवाले यादव राजा महाराष्ट्रके शासक थे। देशकी समस्त प्रजा भी सात्त्विक, धर्मशील एवं श्रद्धाशील थी। सारा समाज भक्ति और भक्तिके आविष्कारसे उत्तेजित हुआ था। समूचे समाजको अध्यात्म-ज्ञानसे आप्लावित करनेकी शक्ति साधुसन्तोंमें विद्यमान थी। अध्यात्म एवं काव्यके पुनरुत्थानका वह समय था। समाजका ऐसा कोई भी स्तर नहीं था कि जिसमें साधुसन्तोंका अभाव रहा हो। ऐसा कोई भी परिवार नहीं था कि जिसमें परब्रह्मका विवेचन या भगवानका नाम संकीर्तन न होता हो। राजपुरुषोंमें चक्रधर, ब्राह्मणोंमें मुकुन्दराज और ज्ञानेश्वर, कुम्हारोंमें गोरोबा, चाटियोंमें विसोबा, दर्जी समाजमें नामदेव, सुनारोंमें नरहरी, मालियोंमें सांवता, महार ज्ञातिमें चोखा और बंका, इतनाही नहीं बल्कि वेश्याओं के समाजमें कोन्होपात्रा, जैसे आध्यात्मिक प्रवृत्ति रखनेवाले व्यक्ति पैदा हुए। कहीं कहीं पूरे परिवार इस भक्ति-भावनामें ओतप्रोत दिखाई देते थे। श्री नामदेवका परिवार भी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यह वह समय था जब पातशहा, सुलतान जैसे महम्मदी सूफी विठू धेडके दर्शन करनेके लिए पंढरपूरकी ओर दौड पडे थे सन्त शिरोमणि ज्ञानदेव उस कालकी सन्त मालिकाके अग्रणी थे। इन्हीं ज्ञानेश्वर महाराजका चरित्र हमारे मित्र और सन्त साहित्यके अभ्यासक श्री दिवाकर जोगलेकरजीने यहाँ प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तकका नाम है ' सन्तवर श्री ज्ञानदेवका संक्षिप्त चरित्र। हिन्दी भाषा-भाषिकोंको मराठी के उत्तमोत्तम साधुसन्तोंकी वाणीसे परिचित करानेके उद्देश्यसे यह पुस्तक लिखी गई है इससे पहले उन्होंने धर्म एवं राजनितिका ठोस ज्ञान रखनेवाले महाराष्ट्रके क्रियाशील सन्तवर श्री रामदासजीका परिचय हिन्दी

भाषिकोंको कराया था; साथ साथ 'मनाचे श्लोक' नामकी उनकी अत्यन्त लोकप्रिय रचनाको अनूदित करनेका श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। मतलब, श्री जोगलेकरजी हिन्दी पर अच्छा अधिकार रखते हैं। पण्डित सातवलेकरजी और प्रोफेसर पराडकरजीने इनके हिन्दी ज्ञानकी सराहना की है।

श्री दिवाकरजी की यह पुस्तक छोटी है अवश्य, **किन्तु आशयकी दृष्टिसे आन्तर भारतीके इस समन्वयात्मक युगमें इसे कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता**। देशमें भावनात्मक एकताका निर्माण करनेके कार्यमें यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। सच पूछिए तो भारतके विभिन्न प्रान्तों में इस प्रकार साहित्य और संस्कृतिका आदान-प्रदान अवश्य होना चाहिए। यही भावनात्मक एकताकी बुनियाद है। मराठी सन्तों और साहित्यिकोंका परिचय अन्य भाषा-भाषीको को कराना जिस प्रकार अभिष्ट है उसी प्रकार अन्य भाषाके साधुसन्तों और साहित्यिकोंकी कृतियोंसे मराठी भाषिकोंको परिचित कराना भी सर्वथा उचित है!

पुस्त के विषय से तादात्म्य होनेके कारण लेखक की शैलीमें ओज एवं प्रसाद दोनों पर्याप्त मात्रामें दृष्टिगोचर होते हैं। ज्ञानेश्वरजीके जीवन की जिन घटनाओंका चुनाव उन्होंने किया है वे उदात्त हैं। ज्ञानेश्वरके कुलकी विठ्ठल भक्ति, पिताजीका संन्यास, गुरूका उपदेश और पुनः गृहस्थाश्रम का स्वीकार, फलस्वरुप सामाजिक बहिष्कार से उत्पन्न संकटों की परम्परा आदि के साथ तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का जीता जागता चित्र भी हमारे सामने उपस्थित होता है।

लौकिक दृष्टिसे जीवन बिताना आवश्यक समझकर ज्ञानदेवने बहिष्कार रूपी कलङ्कको मिटाने के लिए पैठणके ब्राम्हणोंसे अनुरोध किया। ज्ञानदेवने भैंसेके मुँहसे वेदमंत्र का घोष कराया, दीवार को चलाया और सच्चिदानन्दबाबा को पुनः जीवनदान देकर दुष्ट ब्राम्हणों की प्रवृत्तिमें परिवर्तन किया। परन्तु पन्द्रह या अठारह वर्ष की छोटी आयुमें 'ज्ञानेश्वरी' अर्थात् 'भावार्थ दीपिका' का निर्माण ही सबसे बड़ा चमत्कार है! यह ग्रन्थ एक आध्यात्मिक काव्य है नौ हजार ओवियोंका यह नागर पदबन्ध है। इसमें अक्षर प्रामाणिक, मृदु तथा अमृत के आगार हैं। इसमें उनकी प्रज्ञा एवं प्रतिभा है, अर्थवाहकता का अनूठा मेल है। काव्यानन्द के साथ साथ ब्रम्हानन्द का अनुभव करानेवाला यह अनुपम ग्रन्थ एक

उत्तम उदाहरण है । संसार के साहित्य को गौरव प्रदान करने की शक्ति इसमें निहित है ।

श्री ज्ञानदेव का दूसरा ग्रन्थ 'अमृतानुभव' तो मराठी भाषाका उपनिषत् ही है । उनके 'चांगदेव पासष्टी' और अभंगोंका भी यही हाल है । श्री ज्ञानदेव और मुक्ताबाई के अभंग उनके उत्स्फूर्त उद्गार हैं।

व्यवसाय के भिन्न होते हुए भी अध्यात्म एवं साहित्य मे आस्था रखकर ऐसी सरस रचना का निर्माण करनेके लिए हम श्री दिवाकर जोगलेकरजी को हार्दिक बधाई देते हैं और आशा रखते हैं कि भविष्यमें भी उनका यह समन्वयात्मक कार्य निरन्तर बढता रहे ।

बम्बई
विवेकानन्द शताब्दि
१७–१–६३

प्रा. कृ. पां. कुलकर्णी

१

प्रास्ताविक—

भारतके आध्यात्मिक वैभवको पुनः पुनः बल देकर समुन्नत करनेवाले महापुरुषोंमें सन्त शिरोमणि श्री ज्ञानदेवका स्थान विशेष महत्त्वका माना जाअेगा, अिसमें सन्देह नहीं। समस्त समाजके अन्तरंगको आकर्षित करके असाधारणसे लेकर साधारण अनधिकारी स्त्री शूद्रादि जनताके कानोंतक अद्वैतामृत–वर्षिणी भगवद्गीता का सन्देश, लोकभाषामें लोक कल्याणार्थ '**भावार्थ दीपिका**' द्वारा पहुँचाने तथा अिस संसारमें अुनके कर्तव्याकर्तव्यका परिचय करानेका सर्वप्रथम श्रेय श्री ज्ञानदेवको ही है। पन्द्रहसे अठारह वर्षकी छोटी अुम्रमें समस्त पूर्ववर्ती गीताभाष्यों अेवं अन्य सद्‌ग्रन्थोंका अवलोकन तथा निरीक्षण करके अुन्होंने स्वतन्त्र रूपसे लोक–भाषामें, जो पण्डितोंकी दृष्टिमें अुपेक्षित थी, अपने मतोंका निर्भीकतासे प्रतिपादन किया, यह निश्चित रूपसे अुनके परम्परा प्राप्त अध्यात्म–ज्ञान, अनन्य भक्ति, असाधारण बुद्धिमत्ता, प्रखर विद्वत्ता तथा असामान्य धैर्यका परिचायक है। अैसे महात्माके जीवन–चरित्र तथा अुनके पूर्वजोंके सम्बन्धमें अुपलब्ध जानकारी प्रस्तुत करनेका यह विनम्र प्रयत्न है।

"ज्ञानेशो भगवान् विष्णुः" अिस प्रसिद्ध अुक्तिके अनुसार श्री ज्ञानदेव विष्णुके अवतार माने जाते हैं। अवतारी पुरुषोंका जीवन निःसन्देह अलौकिक और अद्भुत होता है, वैसे ही अुनकी परम्परा पवित्र और अुज्ज्वल रहती है अिस नियमके श्री ज्ञानदेव भी अपवाद नहीं थे।

पूर्व वृत्तान्त और जन्म—

पैठणसे आठ मीलकी दूरीपर गोदातटकी अुत्तर दिशामें आपेगांव नामक ग्राममें अिनके पूर्वज पौरोहित्य तथा अन्यान्य क्षेत्रोंमें कार्य करते थे। ये यजुर्वेदकी माध्यंदिन शाखाके, पंच प्रवरान्वित वत्स गोत्रमें अुत्पन्न देशस्थ ब्राह्मण थे।

श्री ज्ञानदेवका वंश–वृक्ष अिस प्रकार है।

वंशवृक्ष
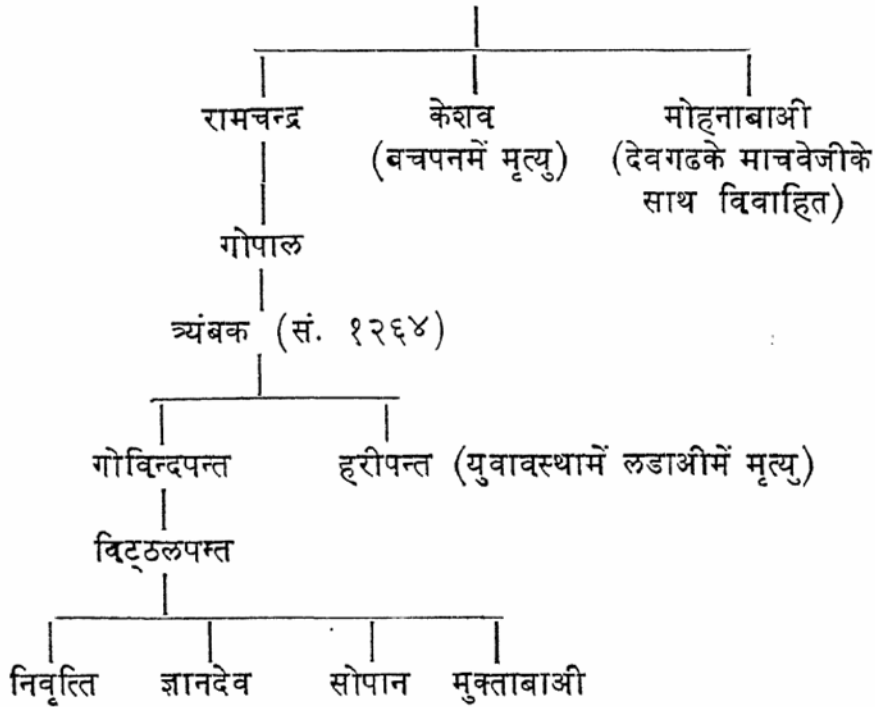
(स्व. हरिभक्ति परायण श्रीपति रघुनाथ भिंगारकरजीके अनुसार)

अिनके वंशके प्रथम तीन पुरुष पौरोहित्य तथा पटवारी का कार्य करते थे। किन्तु अिनकी चौथी पीढीके पुरुष त्र्यम्बकपन्तने राजकाजमें भाग लिया। आप सत्वशील तथा महान भगवदभक्त भी थे। वाक्चातुर्य, महत्त्वाकांक्षी

स्वभाव, समयकी सूझ आदि आपके गुण असाधारण थे। आपने बीड देशकी बागडोर कुछ कालतक अच्छी तरहसे सँभाली थी। अिस सम्बन्धमें राजा जैत्रपालकी सनद भी प्राप्त है। (पृष्ठ ६०, स्व भिंगारकरजी कृत' ज्ञानेश्वर महाराज यांचा काल निर्णय व संक्षिप्त चारित्र) त्र्यम्बकपन्त अितने अुदार थे कि जब देशमें अवर्षणके कारण सतत तीन वर्षों तक अकाल पड़ा और लोग भूखों मरने लगे तब अिन्होंने स्वकष्टार्जित धन देकर दूसरे देशोंसे धान्य मंगवाया और अकालसे पीडित जनोंकी रक्षा की। अिस आत्यन्तिक अुदारताके कारण ये स्वयं बुरी दशामें पड़ गये। धनकी कमी हो गअी। पारिवारिक दृष्टिसे भी अिनके सुयोग्य तथा कार्यक्षम कनिष्ठ पुत्र हरीपन्तके लडाअीमें मारे जानेके कारण, स्वाभाविक था कि अिन्हें संसारसे विरक्ति हुअी। देशके अधिकार-सूत्रोंका त्याग कर वे अपनी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्र गोविन्दपन्तके साथ भगवद्‌भक्तिमें अपना काल व्यतीत करने लगे। समय आनेपर फिर अिनका पारमार्थिक भाग्यसूर्य अुदित हुआ।

जब गोरखनाथजी यात्रा करते करते आपेगांव पधारे थे तब त्र्यम्बकपन्त अुनके पास गये और अुन्होंने अनन्य भावसे अुनकी सेवा की। त्र्यम्बकपन्तका अनन्य भाव और तीव्र वैराग्य देखकर गोरखनाथ सन्तुष्ट हुअे और अुन्होंने त्र्यम्बकपन्तपर अनुग्रह किया। जिस समयसे अिनके वंशमें अध्यात्म और भक्तिकी धारा अखण्डित रूपसे बह चली।

ज्येष्ठ पुत्र गोविन्दपन्त भी महान भगवद्‌भक्त निकले। अुनका विवाह पैठणके शंकरभट देवकुलेकी कन्या नीराबाअीके साथ हुआ। नीरबाअीके भाअी कृष्णाजीपन्तके वंशज अब भी पैठणमें हैं। पचपन वर्षकी अवस्थामें गायत्री पुरश्चरणके फलस्वरूप गोविन्दपन्तके अेक पुत्र हुआ। कोअी कहते हैं कि जब गहिनीनाथ अिनके घरपर भिक्षाके हेतु पधारे थे तब अुन्होंने नीराबाअीको अपनी झोलीसे भस्म भक्षण करनेके लिअे देकर अुसको आशीर्वाद दिया और कहा कि अिसके भक्षण करनेसे अेवं अीशकृपासे तुम्हारे अेक पुत्ररत्न पैदा होगा। सचमुच अैसा ही हुआ और भाग्यवश सुयोग्य अवसरपर विट्ठलको नीराबाअीने जन्म दिया। विट्ठल तो बचपनसे ही विरागी वृत्तिके बालक थे। यज्ञोपवीत संस्कारके अनन्तर अुन्होंने वेद व्याकरण और काव्य कण्ठस्थ करके शास्त्राध्ययन भी किया।

तत्पश्चात् वैराग्यमूर्ति विट्ठल संसारका अनुभव प्राप्त करनेके लिअे पिताजीकी आज्ञा लेकर तीर्थाटनके लिअे निकले। मोक्षदायक द्वारावती, पिंडारक, पोरबंदर, माधवतीर्थ, भालुकातीर्थ, प्रभास (सोरटी सोमनाथ), मुचकुन्द गुफा सप्तशृंगी (नाशिक) त्र्यम्बकेश्वर, भीमाशंकर होते हुअे वे अलंकापुर (आलंदी) आये।

अिस वैराग्यशील और विद्वान युवककी ख्याति वहांके पटवारी सिधोपंतके कानोंतक पहुँची ! सिधोपंत आसपासके चौवीस गाँवके पटवारी थे। वे सदाचार सम्पन्न तथा भगवद्‌भक्त थे। अुन्होंने देखा कि यह नवयुवक आचार सम्पन्न, तेजस्वी, कुलीन (अच्छे वंशका), भक्त, बुद्धिमान और शिक्षित है। पंतने यह भी सोचा कि यदि अैसा सुयोग्य ओर कुलवान वर क्षपनी सुपुत्रीके लिअे मिल जाअे तो अच्छा होगा। जिस विचारसे सिधोपन्तने विट्ठलपन्तको अपने यहाँ बुलाकर आदरपूर्वक सत्कार करके अेक दिन ठहरनेके लिअे अनुरोध किया।

संयोगसे अैसा हुआ कि अुसी रात्रीमें सिधोपंतको भगवदनुज्ञा हुअी कि 'तुम अपनी कन्याका अिस युवकके साथ विवाह कर दो।" दूसरे दिन प्रातःकालमें यह बात विट्ठलपन्तको ज्ञात कराअी गअी और दोनोंके विचारसे यह निश्चय हुआ कि विट्ठलपन्तके माता-पिताकी अनुज्ञा मिलनेपर विवाह सम्पन्न हो। किन्तु अुसी रात्रिमें विट्ठलपन्तको भी भगवदनुज्ञा हुअी कि "अिस कन्याका पाणिग्रहण करो जिससे दोनों कुलोंका अुद्धार करनेवाली दिव्य सन्तति पैदा होगी।"

अिस भगवदनुज्ञापर दोनोंमें विचार विमर्श हुआ और भगवदिच्छा जानकर कुछ सोच-विचार करके विट्ठलपन्तने अुनकी पुत्रीके साथ विवाहके लिए अपनी अनुमति प्रदान की। ज्येष्ठ मासमें सुमुहूर्तपर दोनोंका विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। विवाह सम्पन्न होनेके पश्चात् पंढ़रपुरके अेकादशी-महोत्सवमें सम्मिलित होनेकी अुनकी अिच्छा हुअी तदनुसार अुन्होंने अपने श्वशुर सिधोपन्तसे पंढरपुर जानेकी आज्ञा माँगी। किन्तु सिधोपन्त स्वयं अपना परिवार लेकर अपने नूतन दामादके साथ पंढरिनाथके दर्शनका लाभ अुठानेके लिअे अुद्यत हो गअे। असाढ मासमें ये सब लोग बड़े अुत्साहसे पंढरपुर गये। अुन्होंने पंढरिनाथका दर्शन किया। नूतन पति-पत्नीको पाण्डुरंगके चरण कमलोंपर समर्पित करके भगवानसे आशीर्वाद प्राप्त किया। सिधोपन्त विट्ठलपन्तपर मनही-मन प्रसन्न थे। अुन्हें अपने दामादपर गर्व था। अुनकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि गुणोंको देख कर सिधोपन्तको लगा कि यह पुरुष भविष्यमें सचमुच महात्मा होगा।

विट्ठलपन्तकी पत्नी रुक्मिणी अत्यन्त सरल स्वभाववाली स्त्री थी । अुसका आचरण पतिव्रता धर्मको गौरव देनेवाला था । सिधोपन्तका परिवार अिस प्रकार कुछ काल आनन्द–साम्राज्यके सुखका अनुभव करता रहा ।

अिसके अनन्तर अपनी रामेश्वर यात्रा समाप्त करनेके हेतु वैराग्यमूर्ति विट्ठलपन्त अकेले ही दक्षिण यात्राके लिये प्रस्तुत हुअे । श्री शैल्य, व्यंकटाद्रि, चिदम्बर होकर वे रामेश्वर गये । श्री रामेश्वरका दर्शन करके कोल्हापुर, पंचगंगा, माहुली मार्गसे अलंकापुरको वापस लौटे । विट्ठलपन्तको घर छोडे बहुत दिन हो गये थे । अब अुन्हें अपने माँ–बापसे मिलनेकी तीव्र अुत्कण्ठा हुअी । अुनके जीवनमें घर छोडनेके पश्चात् बहुत परिवर्तन हुआ था । वृद्ध माता–पिता भी अपने प्रिय पुत्रका मुख देखनेके लिये अुत्कण्ठित हो गये थे । विट्ठलपन्तने आपेगाँव जानेका विचार किया । सिधोपन्तको भी अपने समधीसे मिलकर अुन्हें सभी बातें ज्ञात कराने की थीं । अिस दृष्टिसे श्वशुर दामादका परिवार आपेगाँव जा पहुँचा । गोविन्दपन्त और नीराबाअी विट्ठलकी प्रतीक्षामें थे ही । अितनेमें विट्ठलको अपनी पत्नी रुक्मिणीके साथ आते हुअे देख विट्ठलके माँ–बापको अतीव आनन्द हुआ । विट्ठल-रुक्मिणीने अुनके चरणोंमें वन्दन किया । माँ बापने आशीर्वाद दिया । पुत्र और बहूका मुख देखकर वे धन्य हो गये । सिधोपन्तने विट्ठलपन्तके विवाहका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और अपने समधीसे क्षमा माँगी । गोविन्दपंतने सिधोपन्तका यथोचित स्वागत तथा सम्मान किया । सिधोपन्त और अुनकी पत्नी कुछ दिनोंके बाद गोविन्दपन्त और नीराबाईअीके आतिथ्यको स्वीकारकर अलंकापुर लौट आये ।

अपने पिता गोविन्दपन्तकी आज्ञाके अनुसार विट्ठलपन्तने अपनी गृहस्थी चलाअी । साथ साथ पटवारीका काम भी वे देखने लगे । तथापि अुनका झुकाव अधिकतर वैराग्यकी ओर ही रहा । वृद्ध माता-पिताकी अेकान्त सेवा करके अिस नवविवाहित दम्पतीने अुन्हें सन्तुष्ट किया । कुछ कालके अनन्तर गोविन्दपन्त और नीराबाबाअीका स्वर्गवास हुआ ।

यह दुःखद समाचार सिधोपन्तको ज्ञात होते ही वे आपेगांव गये ओर अुन्होने विट्ठलपन्त रुक्मिणीको सांत्वना दी । सिधोपन्त विट्ठल रुक्मिणीको अलंकापुर ले गये और वहाँ कुछ कालतक ठहरनेके लिअे अुनसे अनुरोध किया । सिधोपन्त अपने दामादकी विरागी वृत्तिको खूब जानते थे । हरअेक असाढी और कार्तिकी

अेकादशीको विट्ठलपन्त पंढरपुर जाते थे। अखण्ड भगवन्नाम स्मरणमें लीन रहते थे स्वाध्याय करते थे, और सांसारिक कार्योंकी ओर ध्यान तक नहीं देते थे। सिधोपन्त, अुनकी पत्नी तथा पुत्रीको भय था कि, कहीं विट्ठलपन्त घरबार छोडके संन्यास ग्रहण कर सांसारिक कार्योंसे निवृत्त न हो जाअे। और हुआ भी अैसा ही। दिन प्रतिदिन विट्ठलपन्तकी विरागी वृत्ति बढती गअी और वें अपनी पत्नीके पास संन्यास ग्रहण करनेकी अपनी तीव्र अिच्छा प्रकट करने लगे। रुक्मिणि अपनी ओरसे संन्यास ग्रहण करनेसे विट्ठलपन्तको रोकती थी। क्योंकि अुनके अेक भी सन्तान नहीं थी। अुसे अपने पिताजीसे मालूम हुआ था कि बिना सन्तान प्राप्त हुअे संन्यास ग्रहण करना शास्त्र सम्मत नहीं माना जाता। किन्तु बार-बार पूछे जानेसे मनुष्य स्वभावके अनुसार रुक्मिणी कभी-कभी चिढ जाती। अैसे ही अेक दिन चिढनेपर अुसके मुँहसें असावधानीसे ये शब्द निकल पडे कि " हाँ! गंगा स्नान करने जाअिअे "। सुनते ही विट्ठलपन्तने अुसको पत्नीकी सम्मति माना और अुसी रात्रिमें तुरन्त ही वहाँसे काशीकी ओर प्रस्थान किया। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही ज्ञान हुआ कि विट्ठलपन्त कहीं चले गये। बहुत खोज हुअी पर वे कहीं न मिले।

अिधर विट्ठलपन्तने काशीमें जाकर श्रीपाद स्वामीजीसे संन्यास ग्रहण किया। विट्ठलका नाम चैतन्य स्वामी रखा गया। अिस प्रकार अपनेको सांसारिक कार्योंसे मुक्त करके विट्ठलपन्त अीश्वरके ध्यान-भजनमें पूरी तौरसे जट गये। किन्तु विधि घटना अगम्य और कुछ निराली थी। अुसे आजतक कौंन समझ पाया है ? खैर! श्रीपादने देखा कि चैतन्य मठका सारा कारोबार संभालनेके लिये विश्वासपात्र हो गया है, अतः मठकी सारी व्यवस्था चैतन्यको सौंपकर स्वामीजी स्वयं रामेश्वर की यात्राके लिये चल पडे।

असावधानीसे कहा गया वचन अब अुस सरल हृदया रुक्मिणीको सालता रहा। अुसे पश्चात्ताप हुवा। अुसने सोचा, प्रारब्ध कर्मोंको भोगे विना दूसरा सहारा नहीं है। रुक्मिणीने अपनी शेष आयु जप, तप, और सेवामें बितानेका निश्चय किया। अिन्द्रायणी नदीमें स्नान, अश्वत्थ प्रदक्षिणा, नामसंकीर्तन आदि नित्यक्रम वह निष्ठा पूर्वक किया करती थी। अिस प्रकार अुग्र तपस्यामें कुछ काल बीत गया।

चैतन्यपर मठकी सारी व्यवस्था सौंपकर तीर्थयात्रा करते-करते श्रीपाद स्वामी अलंकापुर पधारे। श्रीपादको देखकर रुक्मिणीबाअीने (जो अुस समय अश्वत्थ

प्रदक्षिणा करती थी) वन्दन करनेपर रीतिके अनुसार स्वाभाविकतया श्रीपादने 'पुत्रवती भव' आशीर्वाद दिया। रुक्मिणीको आश्चर्य हुआ और वह श्रीपाद की ओर देखती ही रही। श्रीपादके कारण पूछनेपर रुक्मिणीने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीपाद अब समझ गअे कि हाल ही में जिस चैतन्यपर अुन्होंने अनुग्रह किया है वही अुसका पिता होगा। अुन्होंने रुक्मिणी और अुसके पिता सिधोपन्तको आश्वासन दिया और कहा कि हमारे साथ काशी चलो, हम सब बातोंका निपटारा कर देंगे। श्रीपादके साथ रुक्मिणी और सिधोपन्त काशी गअे। श्रीपादने चैतन्यसे पूछा कि तुम्हारे कोअी सम्बन्धी थे या नहीं, सच बताओ। चैतन्यने जान लिया कि बात बिगडी। अुन्होंने श्रीपाद की शरण ली और सच बताया कि पत्नीको छोडकर मैं यहाँ चला आया। श्रीपादने समझा कि चैतन्य सच्ची बात बतला रहा है। अुसको अभय और आश्वासन देकर अुन्होंने कहा कि "पत्नीको स्वीकार कर फिर गृहस्थीको अपनाओ और स्वधर्माचरण करो। कोअी बात नहीं यदि शास्त्राज्ञाका प्रमाद हुआ हो। अनुतप्त होनेपर और भगवानकी शरणमें जानेपर वह तुम्हारी अुपेक्षा नहीं करेगा। गुरुजीके अज्ञाके अनुसार चैतन्यने प्रारब्धको जानकर गृहस्था-श्रममें पुनः पदार्पण किया। वे सिधोपन्तकी अनुमतिसे फिर अलंकापुर आये।

जो लोग पहले विट्ठलपन्तको पूज्य मानते थे वे अब अुनको आरुढ पतित होते देख अुनकी भर्त्सना करने लगे। किन्तु सच्चा भक्त अपनी देह प्रारब्धको सौंपकर तीव्र निंदाके बावजूद अपने प्राप्त कर्मोंको करता रहता है। वह समय अैसा था कि अैसे व्यक्तिको निर्दयताके साथ बहिष्कृत किया जाता था। अुसका मुँह देखना भी असगुन माना जाता था। अैसी परिस्थितिमें विट्ठलपन्तको कितनी तकलीफें सहन करनी पडी होंगी अिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। विट्ठलपन्त बहिष्कृत किअे गये। कुत्सित लोग अिनका अुपहास करने लगे कि यह कैसी मूर्खता है कि अेक बार संन्यास ग्रहण करने पर फिर गृहस्थाश्रमको अपनाया जाय! कुछ लोग अिनको विषयी कहकर अिनकी हँसी अुडाने लगे। विवश होकर अुन्हें अपना निवास ग्रामके बाहर करना पडा। भिक्षा माँगकर वे अपनी अुपजीविका चलाते थे।

श्रीपादकी आज्ञाके अनुसार अुन्होंने गृहस्थाश्रमकी अुग्र तपस्याको फिरसे आरम्भ किया। स्वाध्याय, अीश्वरका ध्यान, भजन, पूजन आदि वे आन्तरिक भावसे

किया करते थे। अत्यन्त दरिद्र दशामें अिस प्रकार कअी वर्ष बीत गअे। किन्तु दरिद्र दशा और जन निन्दाके बावजूद भी अिनकी पवित्रता अत्यन्त अुज्जवल रही जिसका असर अुनकी सन्तानोंपर हुआ, और परब्रह्मने सोचा, यही अुर्वरा भूमि अवतार धारण करनेके लिये सुयोग्य है और महेशजीने निवृत्ति, विष्णुने ज्ञानदेव, ब्रह्माने सोपान और आदिमायाने मुक्ताअीके अवतार अिसी देवतुल्य दम्पतीके घरमें धारण किअे। अवतारका हेतु था "अज्ञान तिमिरका नाश करना।"

———

शास्त्राज्ञा

निवृत्ति, ज्ञानदेव आदिके जन्म कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। तथापि जिस मतको जनाबाअी, नामदेव, विसोबा खेचर और सच्चिदानन्द बाबा आदिके अभंग ठोस प्रमाणके रूपमें अुपलब्ध हैं वे यहाँ नीचे अुद्धृत किअे गये हैं। अिसके अनुसार काल निर्णय अिस प्रकार है —

पहला मत—

(अ) अकरा शतें पंचाण्णव वत्सरीं। निवृत्ति अुदरीं प्रगटले ॥ १ ॥
सत्याण्णव सालीं ज्ञानदेव झाले। नव्याण्णवीं देखिले सोपान देव ॥ २ ॥
बाराशतें अेकीं मुक्ताअी जन्मली। जनी म्हणे केली मात त्यानीं ॥ ३ ॥

(आ) महा विष्णुचा अवतार। श्रीगुरु माझा ज्ञानेश्वर ॥ १ ॥
शके अकराशें सत्याण्णव। युवा संवत्सर नाम ॥ २ ॥
वर्षा ऋतु श्रावण मास। कृष्ण पक्ष पर्व दिवस ॥ ३ ॥
अष्टमीचे अपर राती। अुदया आला निशापति ॥ ४ ॥
विट्ठल रखुमाअीचे कुशीं। अवतरले हृषीकेशी ॥ ५ ॥
विश्व तारावया आले। खेचर वन्दीतो पाउलें ॥ ६ ॥

(अि) श्री शालिवाहन भूपति। अकराशें सत्याण्णव मिति ॥ १ ॥
युवा नाम वत्सरा प्रति। श्रावण कृष्ण अष्टमी ॥ २ ॥
गुरुवार रोहिणि। पर्वकाळ परार्थ रजनी ॥ ३ ॥
बैसती देवगण विमानीं। कुसुम वृष्टि करिताती ॥ ४ ॥
विट्ठल रुक्मिणीचे पोटीं। अवतरले जगजेठी ॥ ५ ॥
ज्ञानदेव नामे सृष्टि। श्रीगुरु माझा मिरवितसे ॥ ६ ॥

(अी) अधिक सत्याण्णव शके अकरा शती। श्रावण मास तिथि कृष्णाष्टमी ॥१॥
वर्षाधिनु युवा नाम संवत्सर। उगवे निशाकर रात्रि माजी ॥२॥
पंच महापातकी तारावया जन। आले नारायण मृत्युलोकां ॥३॥
नामा म्हणें पूर्णब्रम्ह ज्ञानेश्वर। घेतसे अवतार अलंकापुरीं ॥४॥

(स्व. ल. रा. पांगारकर कृत ‘ ज्ञानदेव चरित्र)

संवत्	नाम	शक	संवत्सर	तिथि	मास	काल
१३३०	निवृत्ति	११९५	श्रीमुख	कृष्ण १	माघ	प्रातः
१३३२	ज्ञानदेव	११९७	युवा	कृष्ण ८	श्रावण	मध्यरा.
१३३४	सोपान	११९९	अीश्वर	शुक्ल १५	कार्तिक	(१ प्रहर रात्री)
१३३६	मुक्ताबाअी	१२०१	प्रमाथी	शुक्ल १	आश्विन	मध्यान्ह

दूसरे मतकी पुष्टि करनेवाला केवल जनाबाअीका अेक अलग अभंग है। अुसमें शकाब्द दिअे गअे हैं। निवृत्ति ११९०, ज्ञानदेव ११९३ सोपान ११९६, मुक्ताबाअी ११९९। ज्ञानदेवके जन्म कालकी पुष्टि करनेवाले नामदेव, विसोबा खेचर और सच्चिदानन्द बाबा हैं। जनाबाईके अभंगमें केवल शकाब्द दिया गया है। अिन बालकोंका जन्मस्थान अलंकापुरी (आलंदी) जिला पूना है।

अिनके बचपनके सम्बन्धमें यद्यपि विशेष जानकारी अुपलब्ध नहीं है तथापि सन्त नामदेवके अनुसार निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाअी आदि नामाभिधानोंके सम्बन्धमें लोग अुपहास करते थे, हँसी अुडाते थे। अिससे यह स्पष्ट है कि बचपनमें अिनके साथ समाजका व्यबहार अछूत जैसा अेवं बडा ही घृणापूर्ण रहा होगा। सामाजिक बहिष्कार जैसा भीषण दण्ड नहीं। 'संन्यासीके लडके' कहकर सारा समाज अुन्हें तुच्छतापूर्वक सम्बोधित करता था। अुन्होंने अुसे शान्तिसे सहन किया। सच हैं " बूंद आघात सहै गिरी कैसे। खलके बचन सन्त सह जैसे ॥ "

दूसरा मत—

शालिवाहब शके ११९९। निवृत्ति आनन्द प्रगटले ॥१॥
त्र्याण्णवाचें शकीं। ज्ञानदेव प्रगटले ॥ २ ॥
सोपान देखिले। शाण्णवात ॥ ३ ॥
नव्याण्णव सालीं मुक्ताअी देखिली ॥ ४ ॥
जनी म्हणे केली। मात त्यानीं ॥ ५ ॥

(श्री शं. वा. दाण्डेकर सम्पादित 'ज्ञानेश्वरी')

अिनकी शिक्षाके सम्बन्दमें हमारा यह अनुमान है कि सुशील माता और सत्त्वशील पितासे जो आचरण विषयक अुच्च शिक्षा मिलना अुचित है वही शिक्षा अिन सुयोग्य और गुणवान सन्तानोंको मिली होगी। ये छोटेछोटे बालक बचपनसे ही पारमार्थिक बातोंमें दिलचस्वी लेते थे। विट्ठलपन्त स्वयं पूर्ण शिक्पित थे। अिस कारण अुनसे अुच्च शिक्षा प्राप्त होना असम्भव नहीं है। अिनकी प्रगल्भता, र्मामिक संवाद आदि साघु लक्षणोंको देखकर माँ–बाप सुख सन्तोषके सागरमें डूब जाते थे।

निवृत्ति अब यज्ञोपवीत–संस्कारके योग्य हुअे थे। विट्ठलपन्तके समक्ष अेक बडी समस्या खडी हुअी। अुन्हें यह निश्चित रूपसे ज्ञात था कि अलंकापुरका कर्मठ ब्रह्मवृंद लडकोंके यज्ञोपवीत संस्कारके लिअे कदापि सम्मति नहीं देगा। अिसपर रुक्मिणीने सोचा कि वे त्र्यम्बकेश्वर जाकर कठोर तपस्या करें जिससे अुनके मनको शान्ति मिले, कदाचित् अीश्वर साक्षात्कार भी हो जाय। अिस विचारसे वे सभी त्र्यम्बकेश्वर चले गअे। वहाँ प्रतिदिन मध्य-रात्रिमें कुशावर्त तीर्थमें स्नान करके अपनी सन्तानोंके साथ ब्रह्मगिरिकी सत्य परिक्रमा करते थे। वह क्रम लगातार छः मासतक चालू रहा। अिस प्रकार अेक रात्रिमें परिक्रमा करते समय रास्तेमें अुन्हें अेक व्याघ्र दीख पडा। विट्ठलपन्त अपने बालकोंकी रक्षा करने लगे। अितनेमें निवृत्ति कहीं खो गये। विट्ठलपन्तको चिन्ता हुअी। यहाँ निवृत्ति अपना रास्ता भूलकर अंजनी नामक गफामें गये। अुन्होंने अन्दर देखा तो अेक महान् योगी अपने दो शिष्योंके साथ बैठे हुअे हैं; अुनके मस्तकपर जटा, कानोंमें कुण्डल, गलेमें सेल्ही, हाथमें शृंगी (सींगका बना हुआ अेक प्रकारका बाजा) और पुँगी धारण किअे विराजमान हैं! निवृत्तिने सोचा कि यह सचमुच योगी दिखाअी देता है। निवृत्ति अुनसे प्रभावित हुअे। अुन्होंने विचार किया कि अिनसे ही दीक्षा ले लूं ओर जन्मको सार्थक करूँ। वे तुरन्त योगीके आगे नतमस्तक होकर अनुग्रह की प्रतीक्षामें अुनकी ओर ताकने लगे। अेक बालकको अैसे विचित्र समयपर देखकर योगीको आश्चर्य हुआ। पूछताछ करनेपर और अुसकी परमात्माके प्रति सच्ची लगन देख, योगीराजने अुस बालकपर अनुग्रह किया।

अुन्होंने कहा कि "श्री कृष्णकी अुपासना करो और भगवन्नाम संकीर्तनका प्रसार करो जिससे कलिमल कलुषित दीन जनोंके दुख दूर हों और साथ-साथ अुनका भी अुद्धार हो। अुनके मार्गदर्शनके लिअे गीतार्थ प्रकट करो।"

योगीराजने निवृत्तिको सात दिनोंतक अपने पास शिक्षा देनेके अुद्देश्यसे रख लिया और बादमें अुनको लौट जानेकी आज्ञा दी ।

गुर्वाज्ञा लेकर निवृत्ति त्र्यम्बकेश्वर वापस लौटे। विट्ठलपन्त आदि निवृत्तिको ढुंढ, अुनकी बाट जोह ही रहे थे। प्रमुदित विट्ठलपन्तने देखा कि निवृत्तिके रोमरोममें ब्रह्मतेज समाया हुआ है। अपने सुपुत्रसे पूरा वृत्तान्त सुनकर विट्ठलपन्त फूले न समाये। निवृत्तिने ज्ञानेश्वर, सोपान और मुक्ताबाअीको श्रीकृष्णकी अुपासनाका प्रचार तथा प्रसार करनेका अुपदेश देकर अुनको अनुग्रहीत किया। अिनकी गुरु परम्परा अिस प्रकार है :—
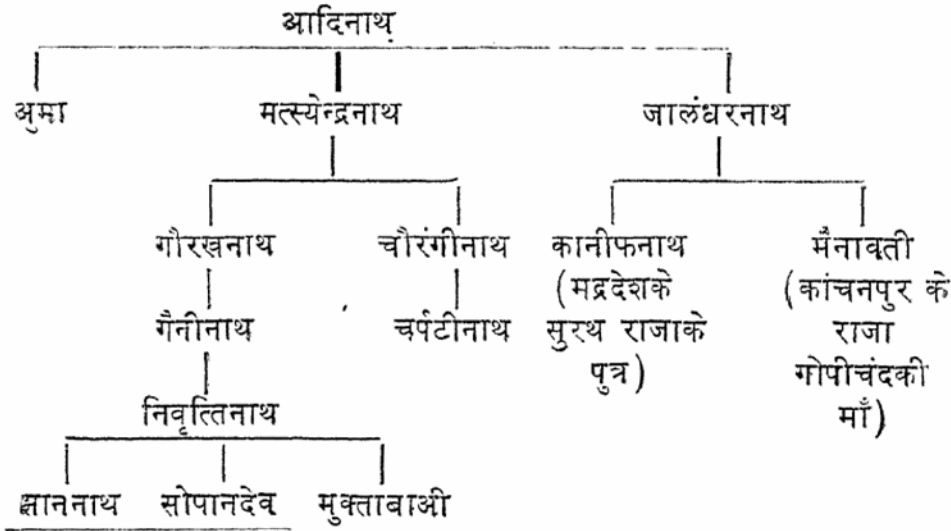
१ गुरु परम्पराके बारेमें निवृत्तिनाथका अभंग यहाँ अुद्धृत किया जाता है :—

आदिनाथ अुमा बीज प्रकटिलें। मच्छिन्द्रा लाधली सहज स्थिति ॥
तेचि प्रेममुद्रा गोरक्षा दिधली। पूर्ण कृपा केली गयनीनाथा ॥
वैराग्यें तापला सप्रेमें निवाला। ठेवा जो लाधला शान्ति सुख ॥
निर्द्वन्द्व निःशंक विचरितां मही। सुखानन्द हृदयीं स्थिर झाला
विरक्तिचें पात्र अन्वयाचें मुख। देअुनी सम्यक अन्यता ॥
निवृत्ति गयनी कृपा केली पूर्ण। कुळ हें पावन कृष्णनामें ॥

(स्व. श्री जोग द्वारा सम्पादित 'ज्ञानदेवाची गाथा' क्र. १७२, निवृत्ति महाराजांचे अभंग शक. १८२९ प्रकरण)

निवृत्ति आदि सब भाअी बहन अब अेक ही साम्राज्य सुखके अधिकारी हो गअे थे। यह निश्चित रूपसे पूर्वपुण्यका प्रभाव था। अिस समय लौकिक रूपसे भले न हो; फिर भी अलौकिक रूपसे अुनका कुल पावन हो गया था, अिसमें सन्देह नहीं।

गृहस्थाश्रममें फिरसे प्रवेश करनेपर बिट्ठलपंत सांसारिक रीति–नीतिका अनुसरण करनेके लिअे बाध्य हुअे! अतअेव अलंकापुरके ब्राह्मणोंसे शीघ्र ही शुद्धिके बारेमें निर्णय कर लेना अुन्होंने अुचित समझा, प्रायश्चित्त चाहे जो भी भुगतना पडे अपनी सन्तान तो जाति बहिष्कृत न रहे। बिट्ठलपन्त स्वयं ब्राह्मण धर्मका विधिवत् पालन कर रहे थे। अिस लिअे उन्हें आशा थी कि कदाचित् अलंकापुरके ब्राह्मण अुनकी प्रार्थनाको स्वीकार करेंगे। किन्तु आशाकी निराशामें परिणति हुअी।

भावार्थ—आदिनाथ शिवजीने अुमा (पार्वती) पर स्वात्मबोधका रहस्य प्रकट किया। वह सहजमें मत्स्येन्द्रको प्राप्त हुआ। वही प्रेमपूर्ण बोध मत्स्येन्द्र-नाथने गोरखनाथको दिया, जो अुन्होंने गयनीनाथको दिया। वैराग्यपूर्ण गयनीनाथ अुस बोधसे शान्त हुअे। अुन्हें शान्ति सुखकी धरोहर ही मिल गयी। अिस प्रकार मनमें अद्वयानन्दका अुदय होनेके कारण वे पृथ्वीपर अनुभव प्राप्त करनेके हेतु बहुत घूमे जिसके कारण वह सुखानन्द (अद्वयानन्द) अुनके मनमें स्थिर हुआ। निवृत्तिनाथ कहते हैं कि श्री गयनीनाथने सोचा कि वह निवृत्ति वैराग्यशील व्यक्ति है अुसको यदि यह आत्मानुभवका आनन्द दिया गया तो यह अन्वयका मुख होगा अर्थात् अिसके द्वारा सम्प्रदायका प्रसार होगा, अतः गयनीनाथने अनन्य प्रेम देकर मुझ जैसे वैराग्यशील युवकपर अनुग्रह किया। अुनके द्वारा हमें जो श्रीकृष्णकी अुपासना प्राप्त हुअी अुससे हमारा वंश पावन हो गया।

२ स्व. रामचन्द्र शुक्ल भी अपने "हिन्दी साहित्यका इतिहास" नामक ग्रन्थमें (सं. २००३ वि. का प्रकाशन) इसी परम्पराके पुष्ट्यर्थ लिखते हैं कि "महाराष्ट्र सन्त ज्ञानदेवने, जो अल्लाउदीनके समय (सं. १६५८) में थे, अपनेको गोरखनाथकी शिष्य परम्परामें कहा है: उन्होंने यह परम्परा इस क्रमसे बताअी है—आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गैनीनाथ, गोरखनाथ, निवृत्तिनाथ और ज्ञानेश्वर।

(पृष्ठ २४)

अलंकापुरके ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करते हुअे अुन्होंने कहा कि "पूज्य ब्राह्मणो, हम पतितोंको पावन कर लीजिअे। हमारे अपराध जो हों अुदारतासे क्षमा कीजिअे। मैंने गृहस्थाश्रमको गुरुजीकी आज्ञाको सरपर धारण करके ही अपनाया, केवल कामवश होकर नहीं। फिर भी यदि आप मुझे अपराधी मानते हैं तो शास्त्र सम्मत प्रायश्चित्तको भोगनेके लिअे मैं अुद्यत हूँ। परन्तु मेरी विनम्र प्रार्थना है कि मेरे निरपराधी बच्चोंको नाहक जाति बहिष्कृत न कीजिअेगा।"

प्रार्थना करनेके बाद विट्ठलपन्तने अपने परिवारके साथ ब्राह्मणोंकी विधिवत् वन्दना की। विद्वान ब्राह्मणोंने शास्त्रोंको ढूंढा और देखा कि अिसके पूर्व कभी किसीसे अैसा अपराध हुआ ही नहीं और अिसके लिअे प्रायश्चित्तकी विधि भी निश्चित नहीं हो पाअी। परम्पराके अभिमानीने निर्णय दिया—"अपने बालकोंके यज्ञोपवीत संस्कार करनेका तुम्हें कोअी अधिकार नहीं है, तुम्हारे दोषोंको मिटानेके लिअे शास्त्रमें प्रायश्चित्त नहीं है और तुम्हारा अपराध अितना बडा है कि अुसको बिना मृत्युदण्डके अन्य कोअी प्रायश्चित्त अुचित नहीं दिखाअी देता!"

विट्ठलपंतने ब्राह्मणोंका अन्तिम निर्णय सर आँखोंपर लिया और स्त्री पुत्रादिकोंका मोह छोडकर वे तुरन्त मृत्युदण्ड भोगनेके लिअे तैयार हो गअे। अुन्होंने ब्राह्मणोंका वन्दन किया और सीधे प्रयाग जाकर श्री गंगाजीकी पवित्र धारामें शरीर त्याग दिया! अुनके पीछे रुक्मिणीबाअी भी प्रयाग गअीं और अुन्होंने भी गंगाजमुनामें शरीर त्याग करके अपने पतिका अनुसरण किया। अिस तरह पति-पत्नीने गुर्वाज्ञाका निष्ठापूर्वक पालन किया, तीव्र लोक-निन्दा और तज्जन्य विविध यातनाअें सहन कीं। मृत्युदण्डकी सजा मिलनेपर अुन्होंने भगवान सूर्यके समान अपने तेजस्वी बालकोंकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। कितना संयम है! कैसा वैराग्य और कितनी धर्म-निष्ठा प्रखर है!! सचमुच अुस सुशील दम्पतीने अपना सर्वस्व स्वधर्मके नामपर न्यौछावर किया!!!

* * * *

३

अलंकापुरसे प्रतिष्ठान

विट्ठलपन्त और रुक्मिणीबाअीके संयम, तीव्र वैराग्य और धर्मनिष्ठाको देखकर अलंकापुरके ब्राह्मण आश्चर्यसे दंग रह गअे। भारतके अितिहासमें यह घटना अपूर्व थी।

केवल सहानुभूति दिखानेके लिअे अलंकापुरके ब्राह्मणोंने निवृत्तिदेवके आगे अपना यह अभिप्राय व्यक्त किया कि वे पैठणके ब्राह्मणोंसे शुद्धिपत्र प्राप्त करें। शुद्धिपत्रकी आवश्यकताके सम्बन्धमें तीनों भाअियोंमें मतभेद था। निवृत्ति स्वभावत: निवृत्त थे, अिसलिअे अुन्हें किसी संस्कार विशेषकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। ज्ञानदेवका मत था कि वेदशास्त्राज्ञानुसार चलना अुचित है। निवृत्तिदेवके आगे अपना अभिप्राय प्रगट करते हुअे ज्ञानदेवने कहा कि :—

विधिवेद विरुद्ध सम्पर्क सम्बन्ध।
नाहीं भेदाभेद स्वस्वरूपीं ॥ १ ॥
अविधि आचरण परम दूषण।
वेदोनारायण बोलियेला ॥ २ ॥
स्वधर्म अधिकार जातिपरत्व भेद।
अुचित तें शुद्ध ज्याचें त़या ॥ ३ ॥
म्हणोनियां संतीं अवश्य आचरावें।
जना दाखवावें वर्तोनिया ॥ ४ ॥
कुळींचा कुळधर्म अवश्य पाळावा।
सर्वथा न करावा अनाचार ॥५ ॥

प्रत्यवाय आहे अशास्त्रीं चालतां ।
पावन अवस्था जरि आली ।। ६ ।।
ज्ञानदेव म्हणे अैकाजी निवृत्ति ।
बोलिली पद्धति धर्मशास्त्रीं ।। ७ ।।

भावार्थ :—वेदविहित या वेद विरुद्ध आचरणका सम्बन्ध स्वस्वरुपके विषयमें नहीं होता। स्वस्वरुपमें भेद और अभेद कदापि नहीं होते। वेद नारायणकी आज्ञा है कि विधिरहित आचरण अत्यन्त निन्दनीय है। अतः हमें विधियुक्त आचरणका पालन करना चाहिअे। जाति–धर्मानुसार और अपने–अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुसार जो जिसका विहित कर्म है वही अुसका शुद्ध धर्म है। अिसलिअे सन्तोंको चाहिअे कि वे स्वयं स्वधर्मका आचरण करके लोगोंके सामने आदर्श रखें। अपने कुलाचारका पालन अवश्य हो। अनाचार करना सर्वथा ठीक नहीं। माना, कि स्वस्वरुका अनुभव हुआ हो फिर भी व्यवहारमें शास्त्रके विरुद्ध चलनेमें आपत्ति है। ज्ञानदेव कहते हैं कि निवृत्तिजी। मेरा नम्र निवेदन है कि यही रीति धर्मशास्त्रमें विहित है।

ज्ञानदेवके कथनका अुद्देश्य यह था कि हमारे व्रतबन्धादि सारे संस्कार विधिवत् हों। हमारा चालचलन वेद बाह्य न हो। अपने स्वधर्मानुसार प्राप्त कर्मोंको हम न भूलें। पहुँचे हुअे व्यक्तिको भी चाहिअे कि वह वेद बाह्य व्यवहार न करे। देखिअे श्री ज्ञानदेवकी दृष्टि कितनी पैनी है।

सोपानदेवका मत था कि :—

भक्ति हे सरती जाती न सरती ।
अैसी आत्मस्थिति स्वसंवेद्य ।

अर्थात् भक्तिका अवलम्ब करनेसे देवभक्तमें अैक्य स्थापित होता है। स्वसंवेद्य आत्मस्थिति 'आत्मस्थिति' है सही किन्तु जाति कभी समाप्त होनेवाली नहीं है।

जातिका झंझट अिस संसारमें जन्म–मृत्यु के कारण लगातार चलता ही रहेगा। अतः हम लोगोंके लिअे यह अच्छा होगा कि हम शुद्धिपत्रके झंझटमें न पड़कर भक्तिका आचरण करें। व्यास वाल्मीकि की जाति क्या अुत्तम थी ? भक्त होनेके कारण ही अुन्हें अुत्तम गति प्राप्त हुअी।

मतभेदोंके रहते हुअे भी तीनों भाअी अेक हृदय थे। अुनके अुपर्युक्त मनोरंजक संवादके पश्चात् यह तय हुआ कि निवृत्तिदेव अलंकापुरके ब्राह्मणोंसे परामर्श करें। तदनुसार निवृत्तिदेवके पूछनेपर अलंकापुरके ब्राह्मणोंने प्रतिष्ठानके ब्राह्मणोंके नाम पत्र दे दिया।

पत्र लेकर निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान और मुक्ताबाअी ये चारों भाअी-बहन धीरे धीरे अपना रास्ता काटते हुअे गोदावरी नदीके तटपर (प्रतिष्ठानमें) आ पहुँचे। स्नानादि समाप्त करके वे गाँवमें गअे। निवृत्तिसे पत्र प्राप्त करनेपर प्रतिष्ठानवासी ब्राह्मणोंको ज्ञात हुआ कि ये चारों संन्यासीके लड़के हैं और व्रतबंधके सम्बन्धमें शास्त्रार्थके जिज्ञासु हैं। निवृत्तिदेवने ब्राह्मणोंको आदिसे अन्ततककी कथा सुनाअी

थोडे दिनोंके अुपरान्त ब्राह्मणोंकी अेक सभा बुलाअी गअी। अुसमें बड़े-बड़े वेदशास्त्र ज्ञान सम्पन्न पण्डित अुपस्थित थे। अुनके समक्ष अलंकापुरके ब्राह्मणोंका पत्र विचारार्थ अुपस्थित हुआ। पंडितोंने बहुत ही परिश्रम किया किन्तु अुन्हें भी प्राप्त समस्याका हल शास्त्रोंमें नहीं मिला। सचमुच समस्या अपूर्व अेवं जटिल थी।

निवृत्ति आदि चारों भाअी-बहनोंके मुखकमल अत्यन्त प्रसन्न दिखाअी देते थे। सारी सभा निर्णयके लिअे अेक बार पंडितोंकी ओर और दूसरी बार अिनके प्रसन्न तथा निर्मल मुखकमलोंकी ओर कुतूहलवश ताकती रही।

श्री नामदेव अपने अभंगमें कहते हैं कि पंडितोंने बहुत विचार करके यह निर्णय दिया कि :—

नाहीं प्रायश्चित्त अुभय कुळ भ्रष्ट।
बोलियेले श्रेष्ठ पूर्वापार ॥ १ ॥
या अेक अुपाय असे शास्त्रमतें।
अनन्य भक्तितें अनुसरावें ॥ २ ॥
तीव्र अनुतापें करावें भजन।
गो खर आणि श्वान वंदोनिया ॥ ३ ॥

भावार्थ :—प्राचीन कालसे श्रेष्ठ कहते आअे हैं कि दोनों कुल भ्रष्ट हो जानेपर अुसका प्रायश्चित नहीं। किन्तु शास्त्रके मतानुसार अिसका अेक अुपाय बतलाया गया है और वह यह है कि अैसे समय अनन्य भक्तिका अनुसरण

करना; अत्यन्त अनुतप्त होकर अीश्वरका भजन करना और गाय, गधा और कुत्तेको समत्व बुद्धिसे अर्थात् सभी प्राणिमात्रमें आत्मतत्त्व भरा हुआ है, अैसा मानकर भक्तिमें पगे रहना।

पंडितोंका निर्णय सुनकर अुन बालकोंको अतीव आनन्द हुआ और अुन्होंने अिस निर्णयको तुरन्त मान्य किया। जिस चाल-चलनको वे अपने जीवनका परम पवित्र ध्येय मानकर अपनाना चाहते थे अुसीके अनुसार बर्ताव करनेकी आज्ञा अुन्हें प्रतिष्ठानके वेदविद्या पारंगत पंडितों द्वारा मिली। पारमार्थिक दृष्टिसे अुनकी यह विजय थी; अुनका अनूठा भाग्य था। अुन बालकोंके मनकी प्रसन्नता वैसी ही अविचल रही। अुस अविचल वृत्तिको देखकर सभामें सम्मिलित सभी विद्वान स्तम्भित रह गअे। साधारण व्यक्ति सराहना करने लगे। शेष रहे कुछ नटखट। वे लगे अुनकी हँसी अुड़ाने और अुनके नामोंका असली अर्थ पूछने। अिसपर निवृत्ति, ज्ञानदेव आदिने अपने–अपने नामोंकी यथार्थता प्रकट की। निवृत्तिने कहा कि मैं निवृत्त होकर अखंड सुखानन्द भोगता रहता हुँ। ज्ञानदेव बोले कि मैं वस्तुका सच्चा और वास्तविक ज्ञान जानता हूँ। अिसीमें मुझे आनन्द है। सोपानदेवने बतलाया कि मैं भक्तको परमात्माके भजनका तरीका बतलाकर अुसको वैकुंठकी प्राप्ति करा देना जानता हूँ जिससे वह धन्य होता है। मुक्ताअीने कहा कि त्रिभुवनेशकी लीला बतलाने और मुक्ति प्रदान करनेके लिअे मेरा अवतार हुआ है। परन्तु अिसको समझनेकी क्षमता अुनमें कहाँ? बन्दर क्या जाने अदरकका स्वाद!'

अितनेमें अेक ज्ञान नामक पखवालधारी भिस्ती भैंसेकी पीठपर पखाल रखकर अुसी रास्तेसे निकला। अुस भैंसे तथा ज्ञानदेवकी ओर लक्ष्य करके किसी अेकने कहा कि अरे नाममें क्या धरा है? देखो अुस भैंसेका भी नाम 'ग्यान' है। ज्ञानदेवने जानलिया कि यह ताना अुन्हींपर कसा गया है। वे तुरन्त नम्रतापूर्वक बोल अुठे कि आप जो कहते हैं वह बात सही है। अुस भैंसेकी और मेरी आत्मा अेक ही है। अिसपर किन्हीं दुष्ट ब्राह्मणोंने कहा कि अच्छा अभी देखेंगे, अिसमें कहाँतक सत्य है और अुन्होंने अुस भैंसेकी पीठपर कोडे लगानेके लिअे कहा। आश्चर्य! कोड़ोंकी चोटोंके निशान श्री ज्ञानदेवकी पीठपर दिखाअी देने लगे। पर अुसमें भी अुन शंकालुओंको सन्तोष नहीं हुआ :—

म्हणती द्विजवर अहो ज्ञानदेवा।
या पासोनि अुच्चारावा वेदध्वनि ।।
तरिच तुमची सत्ता आम्हां येअील कळों।
नाहीं तरी बोलो नका काँहीं ।।

(नामदेव कहते हैं) अजी ज्ञानदेव ! अिस भैंसेसे वेदध्वनिका अुच्चारण कराओ तभी तुम्हारा प्रभाव हमें मालूम होगा क्यों कि तुम कहते हो कि भैंसेकी और तुम्हारी आत्मा अेक ही है अन्यथा चुप हो जाओ, तुम्हें बोलनेका कोअी अधिकार नहीं। ज्ञानदेवने ब्राह्मणोंको विनयपूर्वक अभिवादन किया और अपने गुरुपरम्परा प्राप्त सामर्थ्यके द्वारा अुस भैंसेके मस्तकपर अपनी हथेली रखकर अुसको ऋग्वेद बोलनेका आदेश दिया :—

ज्ञानदेव म्हणें बोले रे ऋग्वेद।
ओंकार मूळ शब्द प्रणवाचा ।।
वेदाचा आरम्भ करता झाला पशु।
विधि अुपन्यासु साङ्ग पुढे ।।
(नामदेव गाथा)

(अिन पूज्य ब्राह्मणोंकी अिच्छा अनुसार) ऋग्वेदको (ऋचाओंको) बोलो। प्रणवके मूल शब्द ओंकारका अुच्चारण करो। ज्ञानदेवके आदेशानुसार भैंसेने अुपन्यासयुक्त साङ्ग विधिवत् वेद बोलना आरम्भ किया।

यह अद्भुत दृश्य देखकर अखिल ब्रह्मवृन्द आश्चर्यसे अवाक् हो गया। तीनों बालक अुनको महेश, विष्णु, और ब्रह्मा प्रतीत हुअे और मुक्ताअी आदिमाता! सभी दुष्ट ब्राह्मण ज्ञानदेवके पैरोंसे लिपट गअे और क्षमा याचना करने लगे :—

कर्मठ अभिमानें ठकलों देहबुद्धि !
गोवियेली विधि निःसन्देह ।।
नेणों भक्ति ज्ञान वैराग्याचा लेश।
कुटुंबाचे दास होअुनि ठेलों ।।
आणिकांसी सांगो आपण नाचरों।
लटिकेचि हुंबरो प्रतिष्ठेंसी ।।
(नामदेव गाथा)

भावार्थ :—व्यर्थ अहंकारके कारण हमने झूठी देह बुद्धिको ही सच मान लिया। निःसंशय हम शब्दशास्त्रमें फँस गअे। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके सम्बधमें हम तनिक भी नहीं जानते, प्रत्युत हम अपने परिवारके दास बन गअे। हम लोग दूसरोंको अुपदेश देते हुअे घुमते हैं ; परन्तु स्वयं आचरण करनेका नाम नहीं लेते; हम झूठी प्रतिष्ठाके पीछे पड़कर सब कुछ खो बैठे हैं।

दुष्ट अेवं दुराग्रही ब्राह्मण अिन देवांशोंकी शरणमें आगअे। अुनका अभिमान गल गया। निवृत्ति, ज्ञानदेव आदिकी वन्दना करके वे ब्राह्मण अुनके कुल अेवं वंशकी भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

ज्ञानदेवने सविनय कहा—'हे भूदेव! यह तुम्हारे चरणरजकी ही महिमा है। हममें अितना सामर्थ्य कहाँ! आपके दर्शनसे पतितोंका अुद्धार होता है और सकल तीर्थ आपके पास होनेपर हमारे दोष भी मिट जाते हैं। आपके जैसे सन्तोंके मिलनेसे आज हम धन्य हो गअे। 'ज्ञानदेवकी अैसी विनयपूर्ण और मधुर वाणी सुनकर सभाके सभी सदस्योंकी आँखें खुल गअीं। सभापति सभाका विसर्जन करना भी भूल गअे। अुन्हें शुद्धिपत्र देनेकी सुध ही न रही।

अिसके पश्चात् प्रतिष्ठानम निवृत्ती, ज्ञानदेव, सोपान और मुक्ताबाई कुछ कालतक रहे। अिस कालमें निवृत्ति आदिके द्वारा प्रसृत भक्तिरूपी गङ्गा प्रतिष्ठान वासियोंको अपने पवित्र जलसे पावन कर रही थी। नामदेव अुनके नित्यक्रमका वर्णन करते हुअे लिखते हैं:—

आध्यात्म ग्रन्थ पाहाती पैठणीं।
गीता संबोधिनी जवळी असे॥
भोगावती स्नान कालिका दरुशन।
वेदान्त व्याख्यान परिमिती॥
धन्य हा सोपान धन्य ज्ञानदेव।
धन्य निवृत्तिराव ब्रह्यरुप॥
सांगती पुराण रात्रीं हरिकीर्तन।
पैठणीचे जन वेधियेले॥

अर्थात् पैठणमें वे आध्यात्मिक ग्रन्थोंको देखते थे। ये अपने पास गीता संबोधिनी हमेशा रखते थे। हररोज भोगावतीमें स्नानादि के अुपरान्त कालिकाके दर्शन करके वेदान्तपर, परिमित व्याख्यान देते थे और रात्रिमें हरिकीर्तन तथा पुराणोंपर प्रवचन देकर अिन्होंने अपनी प्रासादिक तथा ओजस्वी वाणीसे पैठण-वासियोंके मनोंको मोहित किया। ब्राह्मण कहने लगे कि सोपानदेव, ज्ञानदेव तथा निवृत्तिदेव धन्य हैं। ये सभी साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं।

अिसी समय और अेक चमत्कार हुआ। किसी गृहस्थने श्राद्धके दिन ज्ञानदेवको आमंत्रित कियाथा। ज्ञानदेवके पितरोंसे " पितृभिरागन्तव्यम् " कहनेपर साक्षात् पितर अपने-अपने स्थानपर आकर बैठ गअे और अुन्होंने अुस गृहस्थकी पूजाको स्वीकार किया। यह देखकर सब लोग आश्चर्यसे अवाक् हो गये।

विद्वान पण्डितोंने पुनः अेक वार सभी शास्त्रग्रन्थोंका मन्थन किया और अलंकापुरके पत्रका जो अुत्तर दिया वह पढ़ने योग्य हैं :—

हे परलोकींचें तारूं देवत्रय यासी।
प्रायश्चित्त काय द्यावे कोणीं॥
लिहोनिया पत्र दिधले तया हातीं।
समस्तासि निवृत्ति नमस्कारिले॥

अर्थात् यह देवत्रय परलोकको ले जानेवाली नौका है। अिनको क्या प्रायश्चित्त दिया जाय और वह दे भी कौन? मतलब, ये प्रायश्चित्तसे बिल्कुल परे हैं। अैसा लिखकर अुन्होंने निवृत्तिदेवको शुद्धिपत्र सौंपा। पत्र पाते ही निवृत्तिदेवने समस्त ब्रह्मवृन्दको साष्टांग नमस्कार किया।

ज्ञानदेवने भैंसेको ब्राह्मणोंसे माँग लिया। अिस प्रकार प्रतिष्ठानकी यात्राका अुद्देश्य सफल हुआ। निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान ओर मुक्ताबाअी भैंसेको लेकर भावी यात्राके लिअे प्रस्तुत हुअे।

महालयाकी छत्रछायामें

संसारके अज्ञान रूप तिमिरको नष्ट करके विश्वमें स्वधर्म—सूर्यको प्रकाशित करनेका प्रण लेकर अवतीर्ण होनेवाले अिन चारों महात्माओंने अपनी दैवी शक्ति, प्रखर बुद्धि और गुरुकृपाके बलपर प्रतिष्ठान नगरीके मार्गच्युत प्रकाण्ड पण्डितोंकी आँखें खोल दीं तथा अपने रस-भरित पुराण, प्रवचन अेवं व्याख्यान द्वारा भक्ति रसामृतके घूँट पिलाकर प्रतिष्ठान वासियोंको सन्तुष्ट किया। फल-स्वरूप बहुतसे लोग अिनके अनुयायी हो गये। अिससे अिन महात्माओंकी योग्यता जानी जा सकती है। अिस प्रकार अपनी यात्रामें श्रीकृष्ण भक्तिका प्रसार करते हुअे ये लोग नेवासे ग्राममें पधारे।

नेवासे प्रवरा नदीके तटपर बसा हुआ है। प्रतिष्ठानसे यह गाँव लगभग दसमीलकी दूरीपर है। यहाँ अमृत कुम्भ हाथमें धारण करके देवोंको अमृत बाँटनेवाले मोहनीराजका मन्दिर है। अिस अर्धनारीनटेश्वरके हाथोंमें कंगन और बदनपर चोली है। श्री मोहनीराजको ही महालया या म्हालसा कहा जाता है। अमृत-मन्थनके समय दैत्योंको मोहित करके लोककल्याणार्थ अुनसे अमृतकुम्भ छीननेके लिये श्री विष्णुने यह स्त्री वेष (मोहिनीरूप) धारण किया था। अिस क्षेत्रको 'देवोंका निवास' भी कहते हैं। 'निवास' से नेवासे नाम पड़ा होगा। अिसे 'अनादि-पंच-कोश क्षेत्र' मानते हैं। नेवासे ग्रामके दो विभाग हैं अेक 'खंडोबा' का और दूसरा 'मोहनीराज' का।

अिस ग्राममें पहुँचते ही अेक अद्‌भुत घटना घटी। ग्रामके पटवारी अस्वस्थताके कारण बिलकुल निश्चेष्ट हुअे थे। अुन्हें कालकवलित समझकर अुनकी अर्थी निकली थी। अुनकी पत्नी सती होनेके अुद्‌देश्यसे अर्थीके साथ ही थी। अुसने श्री ज्ञानदेवको साधुपुरुष समझकर वन्दन किया। वे अन्तर्ज्ञानसे समझ गअे कि

मृतवत् माने जानेवाले व्यक्तिके प्राण नहीं निकले हैं। अुन्होंने शवपर अपनी अमृतपूर्ण दृष्टि डाली और बोले की सत् चित् आनन्दबाबा (जो पटवारीका नाम था) की मृत्यु बिलकुल असम्भव है। अुनके मुखसे अुक्त वाक्य सुनते ही पट ारी पूर्णतया सचेत होकर अुठ बैठे। यह देख सारा समाज विस्मित हुआ सारा वृत्तान्त जानकर पटवारी बाबा साधुचरितके प्रभावको समझकर स्तम्भित रह गये। ततूपश्चात् पति-पत्नी (बाबा और अुनकी पत्नी) श्री ज्ञानदेवकी शरणमें गये। सच्चिदानंद बाबाने पटवारीके कार्यसे अपनेको तुरन्त मुक्त कर लिया और वे ज्ञानदेवके शिष्य हो गये।

श्री ज्ञानदेवने चारों ओर निरीक्षण करके समाज में देखा कि धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थिति बहुत ही विकृत हो गअी है। अिसलिअे अुन्होंने सोचा कि जन समाजकी सुस्थितिके हेतु सद्‌गुरु श्री निवृत्तिदेवकी आज्ञा लेकर सकल लोक-कल्याणमयी भगवद्‌गीताका भावार्थ जनताकी बोलीमें अुपस्थित किया जाय; जिससे 'फट जाय कुहा भागे प्रमाद' का फल मिलेगा और स्त्री शूद्रादि समूचा जनसमाज ज्ञानयुक्त भक्तिरूप झण्डेके नीचे अिकट्ठा हो जाअेगा। गुरुदेव निवृत्तिनाथने सच्छिष्यको सानन्द अनुमति प्रदान की और तुरन्त ही श्री ज्ञानदेव ग्रन्थलेखनके अिस पवित्र कार्यमें लग गअे। यह ग्रन्थ आगे चलकर 'भावार्थ दीपिका' ज्ञानेश्वरी और ज्ञानदेवी अिन नामाभिधानोंसे प्रसिद्ध हुआ जिसके लिपिकार सच्चिदानन्द बाबा ही थे।

ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश करनेके अुपरान्त ज्ञानकी अवस्थाको भी अविचल भक्ति भावनाके सहारे स्वायत्त करके निर्विकल्प समाधिके अनुपम आनन्दका निरन्तर अनुभव करनेकी शिक्षा हमें श्री ज्ञानदेवके अुक्त ग्रन्थसे मिलती है। अुन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' के अन्तमें जो पसायदान माँगा है अुससे यह स्पष्ट है कि ग्रन्थ लिखनेका अुनका हेतु विश्वकल्याण ही है। दुष्टोंकी दुष्टताका नाश हो, अुन्हें सत्कर्मके प्रति प्रीति हो, विश्वके मानवोंमें स्नेहभावका आदान-प्रदान हो, पापरूप तिमिरका विध्वंस हो, स्वधर्म सूर्यका अुदय हो ओर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" की मंगल कामना सफल हो यही अुनकी हार्दिक अिच्छा थी।

अिनके समकालीन तथा श्रेष्ठ भगवद्‌भक्त श्री नामदेवके निम्नलिखित अभंगसे हमें अिस ग्रंथके सम्बन्धमें महत्वपूर्ण अेवं यथार्थ जानकारी मिलती है :—

ज्ञानराज माझी योग्यांची माऊली ।
जेणें निगमवल्ली प्रगट केली ।।

गीता अलंकार नाम ज्ञानेश्वरी ।
ब्रह्मानन्द लहरी प्रगट केली ।।

अध्यात्म विद्येचे दाविलेसे रूप ।
चैतन्याचा दीप अुजळला ।।

छपन्न भाषेचा केलासे गौरव ।
भवार्णवी नाव अुभारिली ।।

श्रवणाचे मिसे बैसावे येवोनी ।
साम्राज्य भुवनीं सुखी नांदे ।।

नामा म्हणे ग्रन्थश्रेष्ठ ज्ञान देवी ।
अेक तरी ओवी अनुभवावी ।।

(नामदेव गाथा क्र. ९१२)

भावार्थ—मेरे ज्ञानराज योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। (माअुली—जननी; माँ जेसी श्रेष्ठ और दयालु) । अुन्होंने वेदरुपी बेली-वल्लरीको (सब लोगोंको वेदोंका परिचय कराया) प्रकट किया । गीतापर अुन्होंने आभूषण चढ़ाया जिसका नाम ज्ञानेश्वरी है और जिसकी ब्रह्मानंदकी लहरें जनमनमें फैल गअी हैं। अुन्होंने अध्यात्म विद्याका रुप बताकर चेतना शक्तिका दीपक जलाया । छपन्न अर्थात् अनेक बोलियोंकी शब्द सम्पत्तिका अुचित अुपयोग करके अुन्हें गौरवान्वित किया । भवरूपी-समुद्रमें तैरनेके लिये यह नौका निर्माण की गअी है । जो कोअी श्रवण करनेक निमित्त आकर बैठेगा वह अिसके साम्राज्य रूपी भवनमें अखण्ड सुखके अनुभवका अधिकारी होगा । नामदेव कहते हैं कि 'ज्ञानदेवी' ग्रन्थ सचमुच अितना श्रेष्ठ है कि अिस ग्रंथकी अेक ओवीका भी यदि पाठकको अनुभव हुआ तो पर्याप्त है । वह धन्य हो जाअेगा ।

स्व. हरि-भक्ति-परायण श्रीपति भिगारकर बुवा अपने 'ज्ञानेश्वर महाराज यांचा काल निर्णय व संक्षिप्त चरित्र' नामक ग्रन्थके ८१ पृष्ठपर लिखते हैं कि

" जिस ज्ञानेश्वरीका पठन करके श्री अेकनाथ जैसे महासिद्ध, साधु हो गअे अितना ही नहीं बल्कि वे साक्षात् ज्ञानेश्वर हो गअे अुस ज्ञानेश्वरीकी महत्ता बहुत बड़ी है। वह मराठी भाषाकी जननी है, अिसलिअे वारकरी लोग अिसे माँ कहकर पुकारते हैं। ज्ञानेश्वरीमें कर्म, अुपासना और ज्ञान अिस काण्डत्रयका यथार्थ विवेचन मिलता है। अुसमें प्रसाद गुण ओतप्रोत है। अुसे सब टीकाओंमें जानकारोंने प्रमुखस्थान दिया है अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं है। "

अुपर्युक्त अुद्धरणोंसे यह स्पष्ट होगा कि गीता शास्त्रपर जनताकी बोलीमें ज्ञानेश्वरी या ' भावार्थ दीपिका ' श्री ज्ञानदेवके द्वारा की गअी सर्वप्रथम टीका थी और वह अव्वल दर्जेकी थी अिसमें सन्देह नहीं। मराठीका साहित्य अिसके ही कारन पनप अुठा है। पन्द्रह या अठारह वर्षकी अितनी छोटी अुम्रमें अितना विद्वत्तापूर्ण सर्वश्रेष्ठ और प्रासादिक टीकाग्रन्थ लिखना सचमुच अेक असाधारण चमत्कार है।

प्रासादिक अेवं मार्मिक टीका ग्रन्थको देखकर श्रीगुरु निवृत्तिदेव अत्यन्त प्रसन्न हुअे और अुन्होंने ज्ञानदेवको प्रोत्साहनस्वरूप आत्मानुभवपर अेक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखनेके लिअे प्रेमसे आदेश दिया। कहा जाता है कि श्री सद्गुरुकी आज्ञानुसार अुन्होंने दस दिनोंमेंही दस प्रकरणात्मक ' अनुभवामृत ' (बादमें 'अमृतानुभव') नामक ग्रन्थ लिख डाला जो अध्यात्म विद्याका अेक अनमोल हीरा माना जाता है। अिसमें त्रिकालाबाधित वस्तुका यथार्थ दर्शन पाया जाता है। वैसेही अिसमें अद्वैत वेदान्तका रहस्य समाया हुआ है। ज्ञानी भक्तकी हैसियतसे यह ग्रन्थ लिखा हुआ है।

' ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव ' श्रीज्ञानदेवके अनेक जन्मोंके पुण्यकर्मोंका फल है ! अितनी छोटी आयुमें 'वासुदेवः सर्वमिति'—जो कुछ हैं यह सब वासुदेव ही है—अैसा अनुभव होना दैवी सम्पत्तिका अेक निश्चित लक्षण है। अैसा ही पुरुष विश्वका कल्याण कर सकता है। गुरुभक्ति, आचार सम्पन्नता, निरपेक्षिता, नम्रता आदि गुणोंसे युक्त श्री ज्ञानदेव जैसे महात्मा अन्यत्र दुर्लभ हैं।

यह कोअी आश्चर्य नहीं कि श्री महालयाकी छत्रछायामें लिखे हुअे ये दो ग्रंथ आगे चलकर मुमुक्षुओंके आधार, जीवनमुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले भक्तोंके गलहार तथा समस्त मराठी साहित्य संसारके दीपस्तम्भ सिद्ध हुअे।

भ्रम निवारण

महाराष्ट्र सरस्वतीके मन्दिरमें श्री गुरु निवृत्तिदेवके प्रसादसे श्री भगवद्‌गीताके भावार्थकी दीपिकाको प्रज्वलित कर ज्ञानदेवने चारों ओर प्रकाश फैलाया। संस्कृत न जाननेवाले प्राकृत लोग अब गीताके सिद्धान्तको धीरे धीरे भली भाँति समझने लगे। अुन्हें विश्वास हुआ कि मोक्ष केवल अुच्चतम वर्गकी बपौती नहीं; अुसे प्राप्त करनेका अधिकार स्त्रियों, वैश्यां तथा शूद्रोंको भी है। भक्ति भावनासे सम्पन्न 'कोअी भी मानव मोक्षका अधिकारी हो सकता है' अिस सत्यको पाकर वे फुले न समाअे। 'स्वधर्मके अनुसार बर्ताव करनेमें ही सभी वर्णोंका कल्याण है किन्तु परधर्मको अपनाना निःसन्देह भयानक है' अिस प्रकार ज्ञानदेवने सहानुभुतिपूर्ण हृदयसे अुपदेश देकर चारों वर्णोंके बहुजन समाजका विश्वास सम्पादन किया। वे थोड़े ही कालमें ख्यातनाम और विश्वासपात्र मार्गदर्शक अेवं अुद्धारक बन गअे। यद्यपि पण्डित लोग अिनकी असाधारण महत्ताको भलीभाँति समझ गअे थे तथापि ज्ञानदेवके प्रति घमण्डी पण्डितोंका बाहरी बर्ताव घृणास्पद था। अितना होते हुअे भी ज्ञानदेवने शान्त भावसे अुनकी घृणा अेवं निन्दाको सहन किया और अुनके साथ सदैव सभ्यतापूर्ण व्यवहार किया। "मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यमित्रारि पक्षयोः" के वे अुदाहरण थे। धार्मिक समता और मानवता अुनमें कूटकूट कर भरी थी।

अिस प्रकार धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रमें महान कार्य करके श्री ज्ञानदेवने अपने बहन-भाअियोंके साथ नेवासे ग्रामसे आलंदी (अलंकापुर) की ओर प्रस्थान किया। भगवद्‌गीता द्वारा सच्चे धर्मका अुपदेश देते हुअे और भगवन्नाम संकीर्तनका प्रचार करते हुअे ये लोग आले (जिला पूना) ग्राममें पधारे। जो भैंसा अुनके साथ था वह अिसी ग्राममें परलोक सिधारा यहाँ लोगोंने अुसकी समाधि बनवाअी। वहाँसे वे आलंदी गअे। आलंदीमें अुनका बडे प्रेमसे यथोचित स्वागत हुआ। आलंकापुर निवासी अुन्हें अब देवतास्वरूप मानने लगे।

अहंकारी लोगोंकी अहंताका नाश और लोगोंमें फैले-फैलाअे गअे वृथा भ्रमोंको दूर करके अुन्हें स्वस्वरूपका ज्ञान करानेके लिअे ही श्री ज्ञानदेवका अवतार हुआ था। अुन्होंने आलंदीके विसोबा चाटी[1] जैसे अहंकारीका अहंकार मिटा दिया। श्रेष्ट कवि महान भक्त और तत्त्वज्ञ पण्डित होनेके साथ-साथ ज्ञानदेव महान योगी भी थे।

अेक बार अैसा हुआ कि प्रतिष्ठान नगरीसे अेक ब्राह्मण तीर्थयात्रा करते हुअे चांगा वटेश्वर[2] पहुँचा। अुसने यौगिक चमत्कारोंके सम्बन्धमें बातचीत करते हुअे श्री चांगदेवसे कहा कि मैंने प्रतिष्ठान नगरीमें अेक बाल ब्रह्मचारीको (जो हालमें अलंकापुरमें हैं) अेक भैंसेके मुखसे वेदोच्चारण कराते हुअे देखा। सब लोग अुनकी सामर्थ्यकी तारीफ करने लगे। जिन्हें अपनी यौगिक सामर्थ्यका घमण्ड था वे भी दिङ्मूढ हो गअे। यह वर्णन सुनकर चांगदेव चौंक पड़े। अुन्होंने अन्तर्ज्ञानसे हृदयाकाशमें देखा कि हालहीमें अलंकापुरमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश और आदिमायाने अवतार क्रमशः निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, और मुक्ताबाअी धारण किअे हैं। अतः अुनके दर्शनका लाभ अुठानेकी चांगदेवकी अिच्छा हुअी। चांगदेव शिवजीके अुपासक थे। वे अेक महान योगी भी थे। वज्रासन सिद्ध करके अुन्होंने षट्चक्रको पार किया था। अनेक विद्या और कलाओंके वे अच्छे जानकार थे। किन्तु अध्यात्मबलका अभाव होनेके कारण अहंकारके शिकार हो गअे थे। अुन्हें अपनी योग विद्यापर घमण्ड था। शिष्योंने चांगदेवको सलाह दी कि वे अैसी सुनी-सुनाअी बातोंपर विश्वास करनेकी भूल न करें। अुन्होंने अुपर्युक्त विभूतियोंको किस प्रकार सम्बोधन किया जाय, यह न समझ सके अिसलिअे शिष्योंके द्वारा अुन्हें अेक कोरा कागज ही भेज दिया। कोरा कागज पाकर ज्ञानदेव बोले, "क्या! अुन्होंने कोरा ही कागज भेज दिया?" फिर कागजको प्रेमसे वन्दन किया।

मुक्ता बोली कि अितने वर्ष तप करके चांगदेव कोरे ही रह गअे! अिसपर निवृत्तिदेवने ज्ञानदेवसे कहा कि जिससे अुनको स्वस्वरूपका ज्ञान हो जाय अैसा अेक सुन्दर अुपदेश पूर्ण खत लिख भेजो। मालूम होता है कि सिद्धिका बल प्राप्त होनेके कारण चांगदेवको अहंकार हो गया है। गुरुजीकी आज्ञानुसार श्री ज्ञानदेवने चांगदेवको खत लिखा जिसमें पैंसठ (६५) ओवी छन्द समाविष्ट थे। यह खत 'चांगदेव

१. विसोबा चाटी श्री ज्ञानदेवके अुपदेशसे पावन हुअे। अिन्हें विसोबा खेचर कहते हैं।
२. चांगा वटेश्वरका सिद्धाश्रम तापी नदीके तटपर बसा हुआ है।

पासप्टी' के नामसे प्रसिद्ध है। अिसमें परब्रह्म स्वरूपका सम्यक ज्ञान कराया गया है। खतका आशय अिस प्रकार है:—

" आत्मज्ञानका अुदय होनेसे मन, बुद्धि, अहंकारादि नामरूपात्मक जगत्का आप ही आप अस्त हो जाता है। अिसका मतलब यह नहीं कि नामरुपात्मक जगत् परब्रह्म या आत्मवस्तुसे भिन्न है, वरन् नामरूपात्मक जगत्को लेकर ही परब्रह्म या आत्म-वस्तु पूर्ण है। अर्थात् नामरूपात्मक जगत् परब्रह्मसे भिन्न न होकर तद्रूप है। जिस प्रकार सोनेके भिन्न-भिन्न अलंकार बनाअे जाते हैं किन्तु मूल सोना, अलंकार बनाअे जानेसे भिन्न नहीं, अेक ही है अनेकत्व भ्रम है और अेकत्व सत्य है वैसे ही संविद् (आत्मा या परमात्मा या अेकत्व) जगदाकारके रूपमें प्रकाशित होता है। हे चांगदेव! तुम्हारे मिलनके लिये मेरा जी तरसता था किन्तु तुम और मैं का अैक्य स्वभावत: होनेसे हमारा मिलन सहजमें ही सिद्ध है। जैसे अुजालाको अुजाला देखे, शब्दको शब्द सुने, स्वादको स्वाद ही चखे, आँखकी भूमिकापर आँखकाही चित्र बनाकर अुसको आँखसे ही देखा जाय अुसी प्रकार तुम्हारा और मेरा मिलन है। सत् स्वरूप नाम रूपसे परे है, अत: अुस सच्चिदानन्दामृतका पान करके सुखी रहो और आत्मभाव में स्वस्वरुप को देखो।"

जड़ देहबुद्धिके कारण चांगदेवको अिस खतसे तनिक भी बोध नहीं हुआ। कहा जाता है कि चांगदेव तुरन्त तड़क-भडकके साथ ज्ञानदेवके पास जानेके लिअे प्रस्तुत हुअे। साथमें बहुतसे शिष्योंको लेकर अैश्वर्यका प्रदर्शन करते हुअे चांगदेव स्वयं अेक कराल व्याघ्रकी पीठपर सवार होकर सिद्धाश्रमसे (तापीतटसे) निकले। अैसे भयंकर पशुकी पीठपर बैठे हुअे चांगदेव योगीको देख लोगोंको बहुत भय तथा आश्चर्य लगता था। मस्तकपर जटाजूट, आरक्त नेत्र, गलेमें रुद्राक्षकी मालाअें, अेक हाथमें त्रिशूल, तो दूसरेमें सर्प, अिस प्रकार चांगदेवकी मूर्ति भव्य किन्तु भीषण दिखाअी देती थी।

जब चाँगदेव आलंदीके निकट आ गअे तब अुन्होंने अपने शिष्योंके द्वारा श्री ज्ञानदेव आदिको अपने आगमनकी सूचना दे दी। सूचना मिलनेपर निवृत्तिनाथ ज्ञानदेवसे बोले कि अेक महान योगी अपने पास आ रहा है, अत: हमारा कर्तव्य है कि अुसको हम कमसे कम अेक मील तक लिवा लेनेके लिअे चले जाअें।

श्री ज्ञानदेव अुस समय गुरुदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाअीके साथ किसी अेक गिरी हुअी दीवारपर बैठकर सुख संवाद कर रहे थे। गुरुदेवके मुखसे अुपर्युक्त वाक्य सुनते ही ज्ञानदेवने चांगदेवको लेनेके लिअे दीवारको चलनेकी आज्ञा दी। चलती हुअी दीवारको देखकर चांगदेवको बड़ा आश्चर्य हूआ और अुन्हें अपनी थोग साधनाकी कमी महसूस होने लगी। क्या निर्जीव

वस्तुओंपर भी मनुष्य अधिकार कर सकता है? हमने अितना योग साधन किया पर अैसा अधिकार हम नहीं पा सके। यह सामर्थ्य तो कुछ और ही है यह आत्मबलपर तो निर्भर नहीं है! हो सकता है। धन्य! धन्य! ज्ञानदेव! त्रिवार धन्य !!!

अैसा आत्मसंशोधन करते हुअे वे ज्ञानदेव प्रभृतिके पास आकर अुनके चरणोंमें तुरन्त गिर पड़े। साष्टांग प्रणाम करते ही श्री ज्ञानदेव आदिने अभय दिया। बड़ोंके स्पर्शमात्रसे चांगदेवके हृदयमें घर करनेवाले अहंकारने अुनसे विदा लेना अुचित समझा। अुनके हृदयाकाशमें ज्ञानसूर्य शीघ्र ही अुदित होने लगा। चांगदेवने आत्मसर्पण किया। अुनकी संगतिमें वे रहने लगे अेक दिन मुक्ताबाअी वस्त्र रहित होकर स्नान कर रही थी, अितनेमें चांगदेवकी दृष्टि अुस ओर गअी और स्वभावत: वे लज्जायुक्त हो गअे। मुक्ताबाअी बोली कि यदि तुमपर गुरुका अनुग्रह होता तो तुम्हारे मनमें विकल्प कभी नहीं अुठता। अिस वाक्यका चांगदेवपर अच्छा असर हुआ और वे मुक्ताबाअीकी योग्यता समझ गअे।

अिसके पश्चात् कुछ कालके अनन्तर श्री ज्ञानदेवकी आज्ञाके अनुसार मुक्ता-बाअीने चांगदेवको महावाक्य (तत् त्वम् असि) का अुपदेश देकर कृतार्थ किया। चांगदव मुक्ताबाअीके शिष्य हो गअे। देहबुद्धि रहित होते ही चांगदेव 'ज्ञानदेव पासष्टी' का अर्थ आत्मसात् कर सके।

सच बात तो यह है कि चांगदेवको भ्रम हुआ था कि अुनके समान योग विद्याके ज्ञाता समस्त संसारमें कोअी नहीं है। अिस भ्रमका निवारण तो तभी सम्भव था जब ज्ञानदेव जैसे संयमी योगी तथा आत्मबलसे सम्पन्न भक्तसे सम्पर्क स्थापित हो। पारस ही लोहेको कंचन बना सकता है।

तीर्थयात्रा

चाँगदेव जैसे अहंकारी योगीका भ्रम-निवारण हुआ। ज्ञानदेवके दैवी गुणोंका बोलबाला जहाँ-तहाँ होता रहा। अुनकी ' ज्ञानदेवी ' तो अुस समय अधिकांश लोगोंकी चर्चाका विषय बन गयी थी। अुन्हें ज्ञानदेवका तत्त्वज्ञान अधिक प्रभावी लगता था। अुनके बताअे गअे सिद्धान्त व्यावहारिक अुपमा दृष्टान्तोंके सहारे समर्पक दिखाअी देते थे। अुक्त ग्रन्थकी काव्यमयी भाषा आमजनताको मन्त्रमुग्ध करती थी। वैसे ही अुसके द्वारा मानवके दैनंदिन आचार-विचारोंके सम्बन्धमें भी अेक निश्चित-सा मार्गदर्शन सम्पन्न हुआ था।

ज्ञानदेवने विचार किया कि अब भारतवर्षके समस्त तीर्थोंमें जाकर भगवन्नाम संकीर्तन द्वारा आत्मतत्त्वका प्रसार करना चाहिअे। तदनुसार श्री गुरु निवृत्तिदेवकी आज्ञा पाकर वे प्रथमत: पंढरपुर गअे। अुन्होंने प्रेमी भगवद्भक्त नामदेवको अपने साथ ले जानेका संकल्प किया। अुद्देश्य यह था कि यात्रामें सत्संगतिका लाभ मिले। नामदेव विठोबाके अनन्य भक्त थे। विठोबामें अुनका अुत्कट और दृढ़ भाव था।

ज्ञानदेव नामदेवके यहाँ पधारे। ज्ञानदेवको देखते ही नामदेवने प्रेमपूर्वक साष्टांग दण्डवत् किया। दोनोंने अत्यंत प्रेमसे परस्पर आलिंगन किया। अुस समयका वह दृश्य अपूर्व था। अैसे महान ज्ञानी सन्तश्रेष्ठका सहसा आगमन हुवा अिसलिअे नामदेव अपनेको परम धन्य मानने लगे। नामदेवने कहा कि पतितोंका अुद्धार करनेके लिअे ही आपने अवतार धारण किया है। आपको पाकर हम सचमुच धन्य हैं। अिसपर ज्ञानदेव नम्रतापूर्वक बोले कि, हे नामदेव ! तुम तो भक्तोंके सिरमौर हो, तुम्हें भक्ति सुखका पूर्णरूपसे अनुभव हुआ है; संसारके प्रति तुम्हारी सारी वासनाअें नष्ट हो गअी हैं। अतः मेरा सुझाव है कि हम दोनों मिलकर भारतवर्षके समस्त तीर्थ देखें। अिस प्रकार तुम्हारी संगतिका सुख प्राप्त करके मैं अपने जन्मको सार्थक कर सकूँ। परन्तु नामदेव बोले कि—

सुख आहे मज पांडुरंगीं ।
जावें कवणा लागीं कवण्या ठायां ॥

मुझे पाण्डुरंगकी सं में ही सारा सुख प्राप्त है तो मैं किस स्थानके प्रति, किस कारण और क्यों जाऊँ ? हे ज्ञानदेव ! केवल अिसी सुखके हेतु अपना सर्वस्व त्यागकर संसारके मायाजंजालसे मैंने आपको मुक्त कर लिया । भगवानने मेरे जन्मसे ही मुझे पाला और पोसा; अतः काया वाचा और मनसे, मैंने अपनेको अुन्हें बेच दिया है । अिसलिअे हे स्वामी ! अिस बारेमें आपही भगवानसे पूछिअेगा । यदि भगवान मुझे आज्ञा देंगे तो मैं अुसे निश्चित ही सिरपर धारण करूँगा ।

अिसके बाद दोनों भक्त श्री पाण्डुरंगके पास गअे । श्रीके पास ज्ञानदेवने अपना हृद्‌गत व्यक्त किया कि वह नामदेवको यात्राके लिये साथमें ले जाना चाहते हैं । अिसपर भगवान पाण्डुरंगने स्मित हास्य किया और कहने लगे कि हे ज्ञानदेव, तुम तो स्फटिक जैसे अन्तर्बाह्यनिर्मल, ज्ञानस्वरूप और चिद्रूप हो फिर भी यात्राके लिअे प्रस्थान कर रहे हो ! ज्ञानदेव बोले, ' हे स्वामी ! आपका अधिष्ठान सर्वत्र है, तथापि मेरी अिच्छा है कि नामदेवकी सत्संगतिमें पवित्र तिर्थोंमें जाकर अपने जन्मको सार्थक करूँ ! ' अैसा कहकर ज्ञानदेवने पाण्डुरंगके चरणोंपर अपना माथा नँवाया और वे आज्ञाके लिये प्रतीक्षा करते रहे ।

पाण्डुरंग ज्ञानदेवकी ओर संकेत करते हुअे नामदेवसे बोले कि प्रत्यक्ष परब्रह्म स्वरूप ज्ञान नामाकी संगतिकी अिच्छा करता है । अैसा मौका फिर कभी नहीं मिलेगा । अतः यात्राके लिअे सुखसे प्रस्थान करो और शीघ्र लौट आओ । ज्ञानदेवकी संगतिका जितना लाभ तुम अुठा सकोगे अुतना ही अच्छा । अिसपर नामदेव यात्रामें जानेके लिअे तैयार हुअे, किन्तु अुन्हें पाडुरंगके वियोगका भय खलने लगा ।

पाण्डुरंग ज्ञानदेवसे कहने लगे ' ज्ञानदेव, तुम्हें यह भली-भाँति मालूम है कि नामदेवको मैं कदापि अर्थात् अेक क्षण भरके लिअे भी दूर नहीं करता, अिसलिअे कि वह मेरा अत्यन्त प्यारा, दुलारा है । साथ-ही-साथ तुम्हारी बातको भी मैं नहीं टाल सकता । मैं नामदेवको तुम्हें सौंप देता हुँ । ' अैसा कहकर पंढरीनाथने नामदेवका हाथ पकड़कर ज्ञानदेवके हाथमें दिया और यात्रा के लिअे प्रस्तुत होनेकी अनुज्ञा दी । भगवानके चरणोंपर दोनों माथा नँवाकर यात्राके लिअे अविलम्ब प्रस्तुत हुअे ।

पवित्र नदी चन्द्रभागामें स्नान करके दोनोंने महा भगवद्भक्त पुण्डरीकका दर्शन किया और वे भीमा नदीके अुसपार हो गअे। नामदेव और पांडुरंग दोनों विरहावस्थाका अनुभव करने लगे। यह सच है कि भगवान और भक्त मन, कर्म और वचनसे हमेशा अविभक्त होते हैं। यहाँ देव रुक्मिणीसे कहने लगे—

वाटतें जड भारी नाम्याच्या वियोगें :
दाटलें अुद्वेगें चित्त माझें ॥

अर्थात् नामदेवके वियोगसे मुझे बहुत बेचैनी मालूम होती है। मेरा चित्त भी अुद्विग्न-सा हो गया है। नामदेवको मेरे बिना दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अिसकी मुझे बड़ी चिन्ता है।

वहाँ नामदेव और ज्ञानदेव दोनों मार्ग आक्रमण कर रहे हैं। ज्ञानदेव अपनी आत्माकी धुनमें मस्त हैं, तो नामदेवका चित्त अेक पाडुरंगमें मस्त है। नामदेव हरदम पीछे पंढरीकी ओर देखते जाते हैं। पंढरीनाशका वियोग सहा नहीं जाता। कहते है—

चिन्तातूर थोर पडिलों ये परजनीं।
न दिसे माझे कोणी जिवलग ॥

ज्ञानदेव! पाडुरंगकी बात क्या कहूँ। अुन जैसा प्रिय स्वामी मुझे अब नहीं दिखाअी देंता, परदेशमें आनेके कारण बड़ी चिन्ता हो रही है।

ज्ञानदेवने नामदेवसे सान्त्वनापूर्वक मीठे शब्दोंमें कहा कि भगवान तो तुम्हारे हृदयमें ही हैं। समझमें नहीं आता कि तुम वियोगकी अग्निमें किसलिअे तड़प अुठते हो? अुन्होंने कहा—

विचारी सावध होअुनी भक्त राजा।
सुखानन्द तुझा तुजची जवळी ॥

अिसलिअे सावधानीसे सोच विचार करो। हे भक्तराज, तुम्हारा आनन्द सुखकन्द तुम्हारे पास ही है। नामदेवका कण्ठ प्रेमसे गद्गद हुआ और माँके बिछुड़नेसे बच्चा जैसे तरसता रहता है वैसी ही नामदेवकी दशा हो गअी। बोलने लगे कि "अुस स्वामीके दर्शन कराओ। मैं अुन्हें अपनी दृष्टिस कब देख सकूँ! मैं दूसरोंसे किसी भी प्रकारकी आशा नहीं करता। मैं अुन्हें

फिरसे दखना चाहता हुँ। अुनके चरण कमलोंमें ही मेरी रति है। '' ज्ञानदेव नामदेवके अेकनिष्ठ भावको देखकर चौंक पड़े। अुन्हें धन्यवाद देने लगे। नामदेवने अिसपर बातको दोहराते हुअे कहा कि ' वे ही भगवान पांडुरंग मेरे सुखका विश्राम हैं अिसलिअे वे मुझे अत्यंत प्यारे लगते हैं। '

अुपर्युक्त सम्भाषणसे ज्ञानदेवको निश्चित रूपसे मालूम हुआ कि नामदेवका भाव अत्यन्त दृढ़ है और वह भी अेकमेव पाडुरंगमें ही है। और भी प्रेमरस चखनेके हेतु अुन्होंने सोचा कि नामदेवसे ही पूछना चाहिअे कि भक्तिभावकी कुँजी कहाँ और किसमें हैं ? पूछनेपर नामदेवने कहा, ' भगवानके निस्वार्थ भजनमें; ' यद्यपि नामदेवको ज्ञानदेव भगवद्भक्तके नाते जानते थे तथापि अुनकी भक्तिकी गहराअीके सम्बन्धमें वे परिचित नहीं थे। अुन्होंने नामदेवसे पूछा—'' सांगोपांग भजन विधिको किस तरीकेसे आत्मसात् किया जा सकता है ! मैं स्वयं अैसे सुखके लिअे अुत्कण्ठित हो रहा हूँ। अतः मेरा समाधान करो। वैसै ही भजन, नमन, ध्यान, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, भक्ति, धृति, विश्रान्ति आदिके सम्बन्धमें अपने अनुभवका परिचय कराओ। बतानेमें किसी तरहका संकोच न करो। ''

नामदेवने नम्रतापूर्वक कहा कि मैं अेक पंढरीनाथका सामान्य सेवक हूँ। मुझमें अितनी बातें बतानेकी क्षमता कहाँ ? मैं कुछ बहुश्रुत और ज्ञानशील नही हुँ। मैं आप जैसे वैष्णवोंका केवल दास मात्र हूँ। अिसपर ज्ञानदेव बोले कि मेरी ओर कृपायुक्त दृष्टि रखो। नामदेव ! तुम्हारी यह विजय है। मेरा समाधान करनेवाले अेक मात्र तुम ही हो। मैं भलीभाँति समझ चुका हूँ कि तुम्हारी भक्ति केवल आडम्बरका प्रदर्शन नहीं है।

ज्ञानदेव म्हणे तूं भक्त अंतरंग।
न कळे तुज पांग बहुज्ञातेचा ।।

ज्ञानदेव बोले कि तुम अन्तर्बाह्य अनन्य भक्त हो। तुम्हारी बहुज्ञता का पार नहीं।

' पांडुरंग और भक्ति ' के सम्बन्धमें यह गौरवान्वित भाषण सुनते ही नामदेव प्रेमसे जुमड़ पड़े और अनायास अुनके मुखसे अनुभवकी बातें निकल गओीं। अपने वक्तव्यमें नामदेवने कहा कि भक्तिके बिना धर्म और कर्म बेकार है। वह शब्दज्ञान

केवल श्रम मात्र हैं। परन्तु तुम्हारे जैसा ज्ञानी, विरागी और प्रेमी सन्तजन दुर्लभ है। वह तो संयोगवश ही प्राप्त हो सकता है। मेरी समझमें (१) भजनका अर्थ यह है कि सब प्राणीमात्रमें दयाका भाव रखकर अहंकारको छोड़कर भगवानका भजन करना। (२) नमन अुस भावको कहते हैं कि जिससे अन्तःकरणमें आनन्दका प्रकाश रहे और औरोंके गुणदोषोंकी ओर दृष्टितक न जाने पावे। भक्त परमात्माके चरणोंमें नत मस्तक होकर रहे। (३) ध्यानसे यह मतलब है। कि षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न भगवानको विश्वकी हरअेक वस्तुमें देखा जाय और विकार रहित होकर अन्तःकरणपूर्वक भगवानका स्मरण किया जाय। (४) नादलुब्ध हिरणकी तरह देह बुद्धि रहित होकर भगवत्कथाओंको श्रवण करनेमें तादात्म्यका अनुभव करना श्रवण है। (५) कोअी मक्खीचूस जिस प्रकार हमेशा लाभका ही चिन्तन करता रहता है, अुसी प्रकार आत्मलाभके बारेमें अखण्ड विचार करते रहनेको मनन कहा जाता है। (६) जिस प्रकार व्यभिचारिणी पर पुरुषमें आसक्त रहती है या कोशकीटक, सामने अुपस्थित बिलनी (कीड़ा) का अनुसन्धान करता रहता हैं अुसी प्रकार अनुसंधान करना ही निदिध्यासन है अर्थात् सब प्रकारसे व्यवहार करते रहनेपर भी भगवानके स्वरूपमें अेकरूप होकर अनुसंधान करना। (७) सर्व भावसे भगवानका चिन्तन करना, सब प्राणीमात्रमें अुनका रूप देखना तथा सबसे अलग और सत्-रज-तमसे अतीत अर्थात् गुणातीत होकर भगवत्प्रेम सम्पादन करना, अिसका नाम भक्ति है। (८) वृत्ति जब सत्त्वशील, अेकनिष्ठ और तीव्रतर विरागयुक्त, देहबुद्धि रहित होकर प्रारब्धको भोगनेमें समर्थ और निर्बाध रूपसे विकार रहित होती है अैसी वृत्तिको धृति कहते हैं जो भजनमें बहुत ही अुपयोगी सिद्ध होती है। (९) अब विश्रान्ति किसे कहते हैं सुनिअे। जब मन सम्पूर्ण वासनाओं और संकल्पोंसे तथा विकल्पोंसे रहित है और बड़े प्रेमसे अेकान्तमें गोविन्दका ध्यान लगाया जाता है तब विश्रान्तिका अनुभव होता है। अिसके सिवा और कोअी विश्रान्ति नहीं होती। हे ज्ञानदेव! अिस प्रकार मेरा अनुभव है। मैंने आपके प्रश्नका जो अुत्तर दिया है वह मेरे मुखसे पांडुरंगने ही कहलवाया है। अुनकी कृपासे ही यह सब होता है।

अुत्तर सुनते ही ज्ञानदेव बहुत प्रसन्न हुअे। मनही-मन कहने लगे कि चाहे कितने ही शास्त्रज्ञ, बहुश्रुत, सर्वश्रेष्ठ कलाविद्, साधक, आत्मज्ञानी, योगी, जीवन्मुक्त विरक्त और बहुतसे भक्त हो गअे हों परंतु नामदेव जैसा भक्त

बहुत दुर्लभ है । अुनका यह विवेचन केवल कवित्व नहीं है बल्कि यह रस कुछ और ही है, अद्भुत और अनुपम है । यह बात सन्तोंके लिअे विचारणीय है कि अैसा सुख और अैसी विश्रान्ति भी मिल सकती है ।

दोनों भक्त अिस प्रकार अपनी यात्रामें संवाद सुख तथा आनन्दका अनुभव करते थे । किन्तु नामदेवका सारा चित्त पंढरीके पांडुरंगमें ही लगा हुआ था । प्रभास आदि सातों मोक्षतीर्थों की यात्रा समाप्त हुअी फिर भी नामदेवको पांडुरंगके विना चैन नहीं पड़ता था ।

अुनकी यात्राका अेक प्रसंग स्मरणीय है । जब वे मारवाड़के तीर्थोंकी यात्रा कर रहे थे तब अेक बार मार्गमें दोनों तृषाक्रान्त हो गअे । पासमें जो कूप था वह अत्यन्त गहरा होनेके कारण अुसमें अुतरना बहुत मुश्किल था । अुनके पास पानी प्राप्त करनेके लिअे दूसरा कुछ साधन भी नहीं था । तृष्णाके मारे दोनों व्याकुल थे । ज्ञानदेवने कहा कि मैं लघिमा (सिद्धि) के द्वारा पानी अूपर ला देता हूँ । किन्तु यह विचार नामदेवको अच्छा नहीं लगा । वे कहने लगे कि—

आत्मा तो विट्ठल असतां सर्व देहीं ।
माझी कांहीं नाहीं चिंता त्यासी ।।

पांडुरंग सर्वान्तर्यामी हैं, सब देहोंमें स्थित हैं, अैसी परिस्थितिमें अुन्हें मेरी तनिक भी चिन्ता नहीं है ? ज्ञानदेव, थोड़ा धीरज धारण करो । मैं स्वामीको प्रसन्न करके कुछ आश्चर्य दिखला दूं । अैसा कहकर नामदेव पांडुरंगको अन्तर्भावसे पुकारने लगे । संकटके समय लाज रखनेकी याचना की । बड़ी देरतक पांडुरंगकी प्रतीक्षा की । किन्तु कुछ नहीं बन पड़ा । फजीहत होनेका समय आ पहुँचा और भी पुकारा कि किसी तरह अिस दासके प्राणको निभा दो । रुक्मिणीने अुस करुण पुकारको सुनकर पांडुरंगको दासकी रक्षा करनेका सुझाव दिया । अितनेमें चमत्कार हुआ—

तंव गडगडीत कूप अुदकें वोसंडला ।
कल्पांतीं खवळला सिंन्धू जैसा ।।

अेकाअेक वह कूप जलसे सम्पूर्ण भरकर अूमी तरह बहने लगा जैसे कल्पान्त होनेपर समुद्रका जल । यह सारा दृश्य देखकर ज्ञानदेव गद्‌गद् स्वरसे बोले कि नामदेव ! धन्य, धन्य ! तुमने भगवानको कैसे वशमें कर लिया है ! ऋषिगण, गन्धर्व, ब्रह्मादिदेव जिस ब्रह्म तत्वमें समाकर अरूप होनेकी अभिलाषा तथा चेष्टा करते हैं वही पदब्रह्म सगुण रूपमें नामदेवके अन्तनार्दसे पुकारनेपर हमारे सामने प्रकट हुआ ! नामदेव ! धन्य ! धन्य ! त्रिवार धन्य ! कहकर ज्ञानदेव नामदेवके चरणोंपर गिर पड़े । ज्ञानदेवको सगुण भक्तिका प्रबल प्रभाव भलीभाँति ज्ञात हुआ ।

ज्ञानदेवको अिस प्रकार तीर्थयात्रामें नामदेवके साथ अन्य सन्तोंकी सत्संगति तथा नामदेवकी भक्तिकी प्रखरता का लाभ अेवं अनुभव हुआ । नामदेवने यह सिद्ध करके दिखाया कि आर्त भक्तमें वही निष्ठा होती है जो ज्ञानी भक्तमें हुआ करती है । तीर्थयात्राको समाप्त करके दोनों भक्त पंढरपुर लौटे । रुक्मिणी तथा देव अपने भक्तोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुअे और पांडुरंगने रुक्मिणीसे कहा कि देखो यात्रासे लौटनेके अुपलक्ष्यमें प्रीतिभोजका समारोह सम्पन्न करनेका अब नामदेवका विचार दिखाअी देता है । रुक्मिणी बोली कि नामदेवकी अिच्छापूर्ति करनेवाले आपके सिवा और कौन हैं ? अस्तु । अितनी कालावधिके पश्चात् देव भक्तोंका परस्पर मिलन और प्रेम–सुख-संवाद हुआ ।

निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाअी, सावंता, जगमित्र नागा, असुंद सुदामा, विसोबा खेचर, नरहरी सोनार, चोखामेळा, बंका, गोरा कुम्हार आदि भक्त मंडलीके साथ प्रीति–भोजका समारोह बड़े आनन्दसे सम्पन्न हुआ । स्वयं भगवान नामदेवकी तरफसे मंडलीका आतिथ्य अेवं पूछताछ करते थे । नामदेवकी प्रशंसा करके अुच्चिष्ट सेवन करते हुअे भगवानने कहा कि मेरे नामदेवने कामक्रोधादिकोंको दूर करके मुझे अपने हृदयमें बसा लिया है, अिसलिअे मैं अुसका अुच्छिष्ट स्वीकार करता हूँ जिसके मुकाबलेमें ब्रह्मरस भी कोअी चीज नहीं है । अिस संसारमें नामा धन्य है जिसने मेरे प्रेमका रस चख लिया । भगवानने आगे चलकर मंडलीसे कहा कि आजके अिस मंडली समारोहमें संसारके विभिन्न ज्ञान के समस्त अधिकारी तथा आत्म स्वरूप ज्ञानदेव आपको अुपदेश करनेके सुयोग्य हैं । अुनके अुपदेशको ग्रहण कर अुसे दृढ़ भावसे अपनावें जिससे आपका अन्तमें भला होगा । अिसके बाद ज्ञानदेव, भगवान पंढरीनाथ, गुरु निवृत्ति तथा अन्य भक्तवृन्दको अभिवादन

करके विनम्र भावसे बोले कि श्री के आज्ञानुसार मैं आपसे सबका सार कहता हुँ—" प्रेमकी थालीमें अमृतरुपी रस परोसा गया है जिसका सेवन तुरन्त ही कर लो, फिर अैसा अवसर नहीं मिलेगा। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायककी कलामें यह चातुर्य है कि चराचर सकल वस्तुओंमें और भगवानमें भिन्नत्व नहीं है। सारा ब्रह्म 'अेकमेवाद्वितीयम्' है। ब्रह्ममें समा जानेके लिअे हमारे सामने क्लेशरहित सरलसीधा अेकमेव मार्ग है और वह भगवानका कीर्तन करना। कीर्तन करते हुअे मनसे संकल्प-विकल्पको हटाकर बड़ी लगनसे सन्तोंकी शरणमें जाना।" अिसके अनन्तर सभीने भगवानका जय जयकार किया और सभा समाप्त हुअी।

अिस प्रकार तीर्थयात्रा सफल हुअी। अैसा दिखाअी देता है कि ज्ञानदेवने विविध विषयोंपर अभंगोंकी अधिकतर रचना अिसी कालमें की होगी, क्योंकि अिनके अभंगोंमें प्राय: अनुभवकी बातें ही ग्रथित हैं। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि अिसी ज्ञानदेव-नामदेवके समय 'वारकरी सम्प्रदाय' का अुत्थान हुआ होगा।

नामदेवकी सत्संगतिसे भगवन्नाम संकीर्तन तथा आत्मतत्वका प्रसार काफी मात्रामें हुआ, यही तीर्थयात्राका प्रमुख अुद्दिष्ट था। प्रीतिभोजमें जो लोग सम्मिलित हुअे थे वे सब आनन्दमें अुल्लसित होकर अपने अपने स्थान चले गअे। निवृत्ति सब भाअी-बहन आलन्दीकी दिशामें चल निकले।

७

यात्राके अनन्तर

अलंकापुरमें निवृत्ति आदिने ओीश्वर भजन, स्वाध्याय तथा आत्मचिन्तनमें कुछ काल बड़े आनन्दसे व्यतीत किया और अिसके बाद नित्य परिपाटीके अनुसार वे सब कार्तिक सुदी अेकादशीके महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिअे पढरपुर गअे। ज्ञानदेवने सोचा कि अब अुनके लिये अिस संसारमें कुछ करना बाकी नहीं है, अपना कार्य करके वे कृतार्थ हो चुके हैं, अतः समाधिस्थ होनेका अुचित समय हुआ, अैसा सोचकर महोत्सव समाप्त होनेके पश्चात् वे पांडुरंगके सम्मुख हाथ जोडकर विनम्र भावसे खड़े हो गअे। पांडुरंगने अपने प्रेमी और ज्ञानी भक्तको प्रेम पूर्ण दृष्टिसे निहारा। ज्ञानदेवने भगवच्चरणारविन्दमें लीन होकर अपना मनोरथ प्रकट किया। अिसपर श्रीने आश्वासन देकर कहा कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। प्रतिवर्षके अनुसार कार्तिक अेकादशीको पंढरपुरमें महोत्सव होगा। अिसके बाद प्रतिवर्ष कार्तिक वदी ११ से तुम्हारी समाधिके अुपलक्ष्य और सम्मानमें अलकापुरमे महोत्सव मनाया जाअेगा।

सुख स्वरूप ज्ञानदेव समाधिस्थ होने जा रहे हैं. यह ज्ञात होनेपर नामदेवको ज्ञानदेवके भावी वियोगका अत्यन्त दुःख हुआ। वस्तुत निवृत्त निवृत्ति भी डबडबा गअे! छोटे सोपान और मुक्ताबाओी रो पड़े! किन्तु यह सब निर्मल प्रेमके कारण ही था। वह भी थोड़ी देरतक। पांडुरगने भी अपना भाव प्रकट करके सबको असीसा और आश्वासन दिया कि वे अपना भावी कार्यक्रम निश्चिन्त रूपसे कार्यान्वित करे। पांडुरंगकी वन्दना करके निवृत्ति आदि भाओी-बहन अलंकापुर लौटे।

ज्ञानदेवके समाधिस्थ होनेका समाचार सब सन्तोंको ज्ञात होनेपर अुनको भी विरहाग्नि सताने लगी। सारे सन्त भजन-मेलोंके साथ पताकाअें हाथमें लेकर अलंकापुरमें ज्ञानदेवकी अभूतपूर्व संजीवन समाधि देखनेके लिअे अुपस्थित हुअे।

अलंकापुरमें पवित्र अिन्द्रायणीके तीरपर श्री सिद्धेश्वरका विख्यात मंदिर प्राचीन कालसे बसा हुआ है। कहा जाता है कि सिद्धेश्वरके सामने जो नन्दी है अुसके नीचे विवरके भीतर नामदेवके पुत्रोंने श्री ज्ञानदेवकी समाधिका स्थान साफ किया। यह स्थान आज जहाँ अजान वृक्ष है अुसीके ही समीप है। सभी सन्तोंने मिलकर श्री ज्ञानदेवका षोडषोपचार विधियुक्त पूजन किया। श्री ज्ञानदेवकी वृत्ति अन्तर्मुख थी। अुस अवसरका सारा दृश्य बड़ा ही रोमांचकारी था! सब लोग गद्‌गद होकर कहने लगे कि भविष्यमें अैसा अवसर शायद ही आअेगा। आजतक अनेक भक्त हो गअे और भविष्यमें होंगे, किन्तु निवृत्ति-ज्ञानदेवके समान ज्ञानी, महात्मा अेवं अखिल जन समाजको भवसागरकी नौका पार करनेका श्रेष्ठ मार्ग बतानेवाले भक्त फिरसे अवतीर्ण होनेकी बहुत ही कम सम्भावना है।

अिसके बाद ज्ञानदेवने भगवानकी स्तुति करना प्रारम्भ किया (जो अेक सौ नौ ओवी छन्दोंमें ग्रथित है)। स्तुति समाप्त करके अुन्होंने पांडुरंगके चरण कमलोंपर अपना माथा नँवाया। तत् पश्चात् वे श्रीगुरू निवृत्तिदेवकी शरणमें गअे और अुन्होंने अपनेको कृतार्थ कर लिया। ज्ञानदेव नम्रतापूर्वक बोले कि हे गुरुवर? आपने मुझे पाला और पोसा, वसे ही भली-भाँति लाड़-प्यार किया। आप ही के कारण मुझमें स्वरूपाकार होनेकी क्षमता आ गअी और मैं अिस माया नदीको पार कर सका। अिसे सुनकर गुरु निवृत्ति देवका हृदय पिघल गया। अुन्होंने अपने शिष्योत्तमका मस्तक प्रेमपूर्वक आघ्राण करके अुसको असीस देकर आलिंगन किया। निवृत्तिदेवका गला भर आया। अुन्होंने अुपस्थित सज्जनोंसे कहा कि ज्ञानदेवने कभी मर्यादाहीन व्यवहार नहीं किया और अिसीलिअे वे अपने शिष्यत्वकी कसौटीमें सफलतापूर्वक अुतर सके। अुनके द्वारा अमृतवर्षिणी भगवद्‌गीताका गूढ़ार्थ सामान्य जनताको प्राकृत भाषामें सुलभ हो सका। मुझे अिस बातसे अधिक सन्तोष हुआ कि वेदोंके द्वारा जो कार्य अधूरा रह गया था अुसको ज्ञानदेवने पूरा किया और मेरी आँखोंको तृप्त किया।

निवृत्तिदेवके मुखसे यह वचन सुनते ही सारे सन्तोंके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। समाधिमें बैठनेका समय समीप आ रहा था! समाधि-स्थान शुभ्र वस्त्रका आसन, बेल, तुलसीदल तथा सुगन्धित पुष्पोंसे सुशोभित था। भागीरथी आदि

नदियोंका पवित्र जल भी अुसपर छिड़का गया था। निवृत्तिदेव ज्ञानदेवको समाधिस्थानमें ले गअे। ज्ञानदेव आसनपर विराजमान हुअे। 'ज्ञानेश्वरी' सम्मुख रखी गअी।

ज्ञानदेव श्री पांडुरंगसे अन्तिम प्रार्थना तथा कृतज्ञता व्यक्त करते हुअे बोले कि आपकी कृपासे ही मैंने सुख पाया, अतः प्रार्थना है कि मुझे आपके चरणकमलोंके पास ही निरन्तर स्थान मिले। अैसा कहकर श्री पांडुरंग और समस्त अुपस्थित सज्जनोंको त्रिवार वन्दन करके अुहोंने अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया।

अिस प्रकार निरंजन रूपी मैदानमें आँखोंकी भीम मुद्रा लगाकर ज्ञानदेव पूर्ण ब्रह्मरूप हो गअे। अिस संजीवन समाधिका काल शक १२१५ (संवत १३५०) कार्तिक वदी १३ का मध्यान्ह था। निवृत्तिदेव बाहर आ गअे और अुन्होंने अपने हाथोंसे समाधिकी शिला लगा दी। साथ ही साथ सन्तोंने अुच्च स्वरसे ताली बजाकर ज्ञानदेवका जय जयकार किया। अुस स्वरसे सारा गगन निनादित हो अुठा। नामदेव बोले कि अिनके समाधिस्थ होनेसे ज्ञानरूपी दिनकर अस्त हो गया। सारे सन्तोंने अतीव आदरके साथ समाधिको वन्दन किया। अुस समय अुनके नैत्रोंसे आनन्दाश्रु टपक पड़े। अपने शिष्यके प्रति निवृत्ति देवका अितना प्रेम था कि समाधिशिला लगानेके पश्चात् अुनके मनकी स्थिति विचित्र हो गअी। अुन्होंने कहा—

देहा आधीं गेला प्राण माझा

देहको छोड़नेके पहले ही मेरे प्राण निकल चुके क्या किया जाय! अिसके पश्चात् नामदेवने समाधिपर फुल चढ़ाअे। अुन्होंने कहा कि—

नामा म्हणे देवा ज्ञानदेव सृष्टि।
पडेलका दृष्टि पुन: आतां॥
संत अंतरला सखा झाला दूर।
आतां पंढरपुर कैसे कंठू॥

हे पांडुरंग! क्या ज्ञानदेवको फिरसे कभी हम अपने नेत्रोंसे देख सकेंगे? हमारा सखा बिछुड़ गया, वैसे ही हम श्रेष्ठ सन्तसे हाथ धो बैठे। अब मैं अपना समय पंढरपुरमें किस प्रकार व्यतीत करूँ?

कहते हैं कि यह देखकर आखिर भगवानने अलंकारपुरको आसीस देकर वरदान दिया कि जो अिस क्षेत्रमें हरिकीर्तन करेगा वह वैकुण्ठ चला जाअेगा; जो तपस्या करेगा वह निष्पाप हो जाअेगा। भगवानने सब पवित्र तीर्थोंको अनुज्ञा दी कि ज्ञानदेवके लिअे अलंकापुरमें पधारो। गंगा, यमुना, कृष्णा आदि नदियोंको आदेश दिया कि अिन्द्रायणीमें आकर गुप्त रूपसे मिल जाओ। पुण्डरीकसे कहा कि अब आजसे तुम और हम दोनों कृष्णपक्षमें अलंकारपुरके निवासी होंगे। तदनन्तर सभाने भगवानको बडे प्रेमसे वंदन किया।

नामदेवके फूल चढ़ानेके बाद बारी बारीसे सब सन्तोंने श्री ज्ञानदेवकी समाधिपर फूल चढ़ाअे। अुसके बाद नौ दिनोंतक कीर्तन महोत्सव सम्पन्न हुवा मार्गशीर्ष सुदी १० को श्री ज्ञानदेवकी समाधिके सम्मानमें प्रीतिभोज हुआ। तदनन्तर निवृत्ति, सोपान आदि अलंकापुरको छोड़नेपर अुतारू हुअे।

पूनासे तेरह मीलकी दूरीपर सिंहगढ़ (कौण्डिण्यगढ़) की तलेटीपर अेक देवीका पुराना मन्दिर है। वहाँ अुन्होंने कुछ दिन बिताअे और बादमें सब अिन्द्रनील पहाड़ (पुरंदर गढ़ के समीप कन्हा नामक नदीके तीरपर बसे हुअे संवत्सर (सासवड़) ग्राममें कुछ काल ठहरे। वहीं मार्गशीर्ष वदी १३ को सोपानदेवका वैकुण्ठवास हुआ अुसी वर्ष पुणताम्बे (जिला पूना) ग्राममें श्री चांगदेवका स्वर्गवास, माघ वदी १३ को हुआ। अिसके बाद निवृत्तिदेव सन्त परिवारके साथ म्हालसापुर (नेवासें) ग्राममें आ गअे। सबका चित्त श्री ज्ञानदेवकी अनुपस्थितिमें व्याकुल सा हो गया था। नामदेवकी अिच्छा हुअी कि आपेगाँवको अेक बार जाकर त्र्यंबकपन्तकी समाधिका दर्शन करूँ। सो निवृत्तिदेव मुक्ताअीके साथ नामदेवको लेकर आपेगाँव गअे। समाधिका दर्शन करनेके पश्चात् वे वेरूल (दौलताबाद) के घृष्णेश्वरका दर्शन करने गअे। वैशाख वदी १२ शक १२१९ के दिन अेदलाबाद (खानदेश) से दो मीलकी दूरीपर माणेगाँव (महत्‌नगर) में मुक्ताअी सदेह वैकुण्ठ गअीं। कहते हैं कि अुस समय बिजलीकी भीषण गड़गड़ाहट हुअी और ज्योतिमें ज्योति मिल गअी।

अिस प्रकार ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाअी पाँच महीनेके भीतर अिस संसारसे मुक्ति पा गअे। अितना ही नहीं किन्तु निवृत्तिदेव नामदेवके साथ त्र्यम्बकेश्वरके दर्शन करने जब गअे तब शक १२१९ ज्येष्ठ वदी १२ को वे भी समाधिस्थ हो गअे। अिस प्रकार सारा परिवार अीश्वर-स्वरूप हो गया!

८

अुपसंहार

" मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः नच धूमायितं चिरम् । "

सच है, निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताअीने संसारके हितके कारण ही अवतार धारण किया था, चाहे अुनकी आयु संसारकी दृष्टिसे अल्प क्यों न हो, अुनकी कीर्ति-पताका अजर अेवं अमर हुअी ! अतअेव अुनके सम्बन्धमें यह अुपर्युक्त अुक्ति चरितार्थ सिद्ध हुअी, अिसमें तनिक भी सन्देह नहीं। नामदेव भगवानसे सम्बोधित करते हुअे कहते हैं कि—

गेले दिगम्बर अीश्वरी विभूति ।
राहिल्या त्या कीर्ति जगामाजीं ॥
वैराग्याच्या गोष्टी अैकिल्या त्या कानीं ।
आतां अैसे कोणी होणें नाहीं ॥
सांगतील ज्ञान म्हणतील खूण ।
नयेचि साधन निवृत्तीचें ॥
परब्रह्म डोळां दावूं अैसे म्हणती ।
कोणा नये युक्ति ज्ञानोबाची ॥
करतील अर्थ सांगतील परमार्थ ।
नये पा अेकान्त सोपानाचा ॥
नामा म्हणे देवा सांगूनियां कांहीं ।
नयें मुक्ताबाअी गुह्य तुझें ॥

"ये अीश्वरी विभूतियाँ दिगम्बर होकर हममेंसे अदृश्य हो गअीं परन्तु अिस संसारमें अुनकी कीर्ति अजरामर हुअी । वैराग्यके बारेमें बहुत–सी बातें सुनाअी

पड़ती हैं, परन्तु मेरा ख्याल है कि भविष्यमें अैसे वैराग्यशील सन्तोंका होना असम्भवनीय–सी बात है। बहुतसे लोग ज्ञानकी बातें बताअेंगे और ब्रह्मप्राप्तिके लक्ष्यकी ओर संकेत करेंगे परन्तु निवृत्तिदेव जैसे साधन बतानेवाले महात्मा कोअी भी देखनेमें नहीं आअे। वैसे ही कअी लोग कहा करते हैं कि हम साक्षात् परब्रह्म बता सकते हैं वरन् ज्ञानदेवकी परब्रह्म बतानेकी युक्ति शायद ही किसीमें होगी। बहुतसे अूहापोह करके अर्थ बतलाकर 'परमार्थ क्या चीज है' यह बताअेंगे किन्तु सोपान देवकी वह अेकान्त अनुभव करके बतानेकी शैली, औरोंमें नहीं। वैसे ही मुक्ताबाअीकी गुह्य (गूढ़) तत्त्व बतानेकी शैली भी अत्यन्त दुर्लभ है।

सारांश निवृत्ति, ज्ञानदेव सोपान और मुक्ताबाअी अिस सन्त चतुष्टयने स्वयं नारकीय यातनाओंका सहन करके अपने अलौकिक गुणोंसे लोगोंको अपनी ओर आकृष्टकर अुन्हें सन्मार्गकी दीक्षा दी। अुन्होंने विसोबा चाटी और चांगदेव जैसे अहंकारी व्यक्तियोंके अहंकारको दूर करके अुन्हें मोक्षका अधिकारी बनाया। नामदेवादि सन्त तो अुनकी सत्संगति और भक्तिमें पागल हो गअे थे। नामदेव जैसे प्रेमी भक्तने अिनका रसभरित जीवन चरित सुवर्णाक्षरोंसे लिखा है। निडरता, शुद्ध सात्त्विक वृत्ति, अिन्द्रिय-निग्रह भगवदुपासना, वेदशास्त्राध्ययन ऋजुता, स्वधर्माचरण, मन–कर्म–वचनसे अहिंसा, सत्य, कर्मफलका त्याग, शान्ति, अुदारता, सब भूतोंमें दया और समदृष्टि, निर्लोभता आदि तेजस्वी दैवी गुणोंसे सम्पन्न ये ज्ञानी भक्त शिवस्वरूप हो गअे। ज्ञानदेवी, अमृतानुभव जैसे ज्ञानदेवके ग्रन्थ तो अमरताके स्मारक हैं। भारतमाताकी महानता अिसीमें है कि अुसकी गोदमें श्री ज्ञानदेव जैसे ज्ञानी और निष्काम कर्मयोगी भक्त सुअवसर पाकर भाग्यवश जन्म लिया करते हैं!

परिशिष्ट

श्री ज्ञानदेव की 'ज्ञानेश्वरी'

श्री ज्ञानदेव मराठी भाषाके वैभवके निर्माता हैं । उनकी काव्य राशि अपार एवं अनमोल है । उनके समूचे काव्यका मूल्याङ्कन करनेके बजाय हम यहाँ संक्षेपमें उनकी ज्ञानेश्वरीपर थोडा कुछ प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे ।

ज्ञानदेव कालीन महाराष्ट्र सुख–सम्पन्न था । विद्या–कलाओंका आगार था । जैसे :—

> यदु वंश विलासु । जो सकला कला निवासु ॥
> न्यायातें पोषी क्षितीषु । श्री रामचंद्र ॥ (ज्ञा. १८ । १८४४)

जिस महाराष्ट्र देशमें गोदावरी नदीके दक्षिण तटपर नेवासें ग्राम के महालया मन्दिरमें ज्ञानेश्वरी (संवत् १३४७, शक १२१२) लीखी गई, उस देशके राजा श्री रामचंद्र (रामदेवराव) सचाई के साथ न्यायसे पूर्ण राज्यशासन करते थे । राजा श्री रामचन्द्र यदुवंशके भूषण थे । उनका राज्य विद्या–कलाओंका निधान था । देश वैभव सम्पन्न था । जनता, स्वराज्य का उपभोग करती थी । यद्यपि मुसलमानोंका उपद्रव उत्तर भारत में था तथापि दक्षिण भारतमें इनका उपद्रव उस समय नहीं के बराबर था ।

श्री ज्ञानदेव के समय बौद्ध और जैन दर्शनका बहुत कुछ बोलबाला था । महानुभाव तथा लिंगायत पन्थोंका भी प्रसार हो रहा था । किन्तु इन्हें बल नहीं प्राप्त हुआ था । श्री ज्ञानदेवने अद्वैत तत्त्व ज्ञानका प्रबल समर्थन किया । उन्होंने, प्रतिस्पर्धी अवैदिक पन्थोंके मतका उदारतासे अपनी गीता–टीका द्वारा खण्डन किया । श्री ज्ञानदेवकी विशेषता इसीमें है कि उन्होंने स्वधर्म की ओर लोगोंको आकृष्ट करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य किया । इस दृष्टिसे मराठीमें अर्थात

जनसाधारण की भाषामें भगवद्गीतापर आलोचना लिखकर उन्होंने उसे स्त्रियों एवं शूद्रोंतक याने आम जनतातक पहुँचाया। ज्ञानेश्वरी की सहायतासे उन्होंने धर्म के आडम्बर को नष्ट करके उसके अन्तरङ्गपर प्रकाश डालकर वारकरी सम्प्रदायका पुनरुत्थान किया। धर्मकी महानताके सम्बन्धमें आप कहते हैं :—

" या कारणें बापा। जया आथी आपली कृपा॥
तेणें वेदांचिया निरोपा। आन न कीजे॥ (ज्ञा. १६/४५५)
पे अहिता पासौनि काढिती। हित देऊनि वाढविती॥
नाहीं श्रुति परौती। माउली जगा॥ (ज्ञा. १६/४६२)

इसलिए हे अर्जुन! जो अपने लिए (वेदोंसे) कृपादृष्टि चाहता है उसको चाहिए कि वह वेदाज्ञाका कदापि उल्लंघन न करे। अहित को दूर करनेवाली और हित को बढानेवाली श्रुति के अतिरिक्त अन्य कोई माँ इस विश्व में नहीं है।"

ग्रन्थके प्रयोजनको बताते हुए आप कहते हैं :—
" एथ अविद्यानाशु हे स्थळ। तेथें मोक्षोपादान फळ।
या दोहीं केवळ। साधन ज्ञान॥ (ज्ञाः १८/१२४३)

गोताका विषय अविद्या अर्थात् अज्ञानको मिटा देना हैं, अतएव मोक्ष प्राप्ति ही इसका फल है। अविद्यानाश तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान ही केवल एकमात्र साधन है।" इसी ज्ञानका प्रसार उन्होंने लोक भाषामें किया। लोकभाषापर उन्हें बहुतही गर्व है। देखिए :—

" माझा मराठाचि बोलु कौतुकें। परि अमृतातें ही पैंजासीं जिंके॥
ऐसी अक्षरें रसिकें। मेळवीन॥ (ज्ञा. ६/१४) और
मऱ्हाटियेचां नगरी। ब्रह्म विद्येचा सुकाळु करीं॥
घेणेंदेणें सुखचि वरी। हों देई या जगा॥ (ज्ञा. १२/१६)

मेरा प्रतिपादन मराठीमें है सही; किन्तु मैं उसमें ऐसी शब्दरचना करूँगा कि वह लीलया और निश्चित रूपसे अमृत की अपेक्षा भी बढकर रहेगी। गुरु कृपादृष्टि को सम्बोधित करते हुअे आप कहतें हैं कि इस मराठौ भाषाके

(प्रांगणमें) नगरमें ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मज्ञान की भरमार कर। उसकी विपुलता होने दे और सारे विश्व को केवल ब्रह्म-सुख की ही पेठ बना दो।"

वैसे तो, श्री ज्ञानदेव ज्ञानी, अभिजात् कवि, साक्षात्कारी सन्त, आदरणीय भक्त एवं विनम्र थे। उन्हें विश्वकल्याण की लगन थी। उनकी गुरुभक्ति अनिर्वचनीय थी! दैवी सम्पत्तिके गुणोंका मानों वे आगार थे। इन गुणोंके प्रभावसे ही उनका काव्य निखर उठा है। उपमा, भाषासौन्दर्य, प्रवाहपूर्ण शैली, तत्त्वज्ञान का सुन्दर प्रतिपादन, सरस रचना ओज, माधुर्य, और प्रसाद से युक्त ज्ञानेश्वरी अनुपम गीता-टीका हो गई है। टीकात्मक ग्रन्थ सामान्य तथा नीरस होते हैं किन्तु "ज्ञानेश्वरी" तो सर्वाङ्गसुन्दर और सरस है? नमूने के लिए कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

" जो सर्व भूतांचा ठायीं। द्वेषातें नेणेंचि कहीं॥
आप परू नाहीं। चैतन्या जैसा॥ (ज्ञा. १२/१४४)
गाईची तृषा हरूं। कां व्याघ्रा विष होऊनि मारूं॥
ऐसें नेणेंचि कां करूं। तोय जैसें॥ (ज्ञा. १२/१४७)
तैसी आघवाचि भूतमात्रीं। एक पणें जया मैत्री॥
कृपेची धात्री। आपण पां जो॥ (१२/१४८)

सर्व व्यापी चैतन्य को जिस प्रकार 'अपना या पराया' का तनिक भी भेदभाव नहीं रहता, उसी प्रकार जिसमें ऐसा भाव बिलकुल नहीं रहा हो, ऐसा व्यक्ति किसी भी भूतमात्र का द्वेष कभी नहीं करता। पानी ऐसा कभी जानता ही नहीं कि गाय की प्यास बुझा दूं और बाघ को विष बनकर मारूं। उसी तरह एकत्व के बोधसे समस्त भूतमात्र के साथ ऐसा व्यक्ति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है और वह कृपा की जन्मभूमि बन जाता है।"

'कथन' के बारेमें श्री ज्ञानदेव कहते हैं कि मेरा कथन इतना रससे परिपूर्ण होगा कि!—

" ऐका रसाळपणाचिया लोभा। कीं श्रवणींची होती जिभा॥
बोलें इंद्रियां लागे कळंभा। एकमेकां॥ (ज्ञा. ६/१६)

सुनिए! अति मधुरता के लोभसे शायद कर्णेंद्रियाँ भी जिव्हाएँ बनेंगी

और मेरे शब्दों की वजहसे इंन्द्रियोंमें परस्पर होड़ पदा होगी। इतना ही नहीं बल्कि :—

" मूल ग्रन्थीचिया संस्कृता। वरी मऱ्हाटी नीट पाहतां ।।
अभिप्राय मानलिया उचिता। कवण भूमि हे न चोजवें ।। (ज्ञा. १०/४३)
जैसे अंगाचेनि सुन्दरपणें। लेणिया आंगचि होय लेणें।
तेथ अलंकारिलें कवणकवणें। हे निर्वचेना ।। (ज्ञा. १०/४४)

अर्थात् अलंकार धारण करनेवाला शरीर सुन्दर है और अलंकार भी उत्कृष्ट हैं; ऐसी परिस्थितिमें कौन किसको शोभा देता है, यह बता देना जैसा जैसा मुश्किल है वैसे ही मूल संस्कृत गीता उत्तम और तिसपर भी साहित्य से शृंगारित, मेरी देशी टीका उत्तम ! इसमें ऐसा भ्रम होगा कि कौनसी मूल टीका है, संस्कृत या प्राकृत !

गीतार्थ की विशेषता को बताते हुए आप कहते हैं कि :—

" या गीतार्थाची थोरी। स्वयें शम्भू विवरी ।।
जेथ भवानी प्रश्नु करी। चमत्कारोनी ।। (ज्ञा. १/७०)
तेथ हरू म्हणे नेणिजे। देवी जैसे कां स्वरूप तुझें ।।
तैसे नित्य नूतन हें देखिजे। गीतातत्त्व ।। (ज्ञा. १/७१)

इस गीतार्थका बडष्पन इतना है कि जब शंकरजी स्वयं इस सम्बन्धमें विचार करने बैठे थे तब पार्वती देवीने प्रश्न किया कि आप हमेशा क्या विचार करते हैं ? उत्तरमें शंकरजीने कहा कि, हे देवी ? जिस प्रकार तुम्हारे स्वरूप का अन्त नहीं लगता, उसी प्रकार गीता का ही अन्त नहीं लगता। ज्यों ज्यों हम गीतातत्त्व को देखने–परखने जाते हैं, त्यों त्यों यह नित्य नूतन ही प्रतीत होता है। "

आपकी विनम्रता को देखिए :—

" कीं टिटिभू चांचू वरी। माप सूये सागरीं ।।
मी नेणत तयापरी। प्रवर्तें एथ ।। (ज्ञा. १/३८)

टिटहरीने (समुद्रका शोषण करनेके लिए) जिस प्रकार अपनी चोंचसे समुद्रका जल बाहर निकाल देनेका प्रयास किया उसी प्रकार श्री ज्ञानदेव कहते हैं कि मैं अल्पज्ञ, इस कामके लिए (गीतार्थ करनेके लिए) प्रस्तुत हो गया हूँ।

इतनी छोटीसी आयुमें ज्ञानदेव का निरीक्षण बडा व्यापक एवं सूक्ष्म था। पारमार्थिक सत्य का समर्थन करने के हेतु उन्होंने एक हृदयंगम व्यावहारिक दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। केवल कल्पना करके जीवात्मा किस तरह संसारमें उलझा या फँस जाता है, इसका स्पष्टीकरण शुक-नलिका न्याय के द्वारा किया है; देखिए :—

" जैसी ते शुकाचेनि आंगभारे। नलिका भोंविन्नली एरी मोहरें ॥
तरी तेणें उडावे परी न पुरे। मनशंका ॥ (ज्ञा. ६/७६)
वायाचि मान पिळी। अटुवें हियें आवळी ॥
टिटांतु नळी। धरूनी ठाके ॥ (ज्ञा. ६/७७)
म्हणे बांधला मी फुडा। ऐसिया भावनेचिया पडे खोडां ॥
कीं मोकळिया पायांचा चवडा। गोंवी अधिकें ॥ (ज्ञा. ६/७८)
ऐसा काजेंबीण आतुडला। तो सांग पां काय आणिकें बांधला ॥
मग नोसंडी जरीं नेला। तोडूनी अर्धा ॥ (ज्ञा. ६/७९)
म्हणऊनी आपणपया आपणचि रिपु। जेणें वाढविला हा संकल्पु ॥
येर स्वयंबुद्धि म्हणे बापु। जो नाथिलें ने धे ॥ (ज्ञा. ६/८०)

(तोते को पकड़ने के लिए बाँधी हुई नलिका के ऊपर तोता बैठनेके कारण) जब तोतेके शरीर के वजनसे वह नलिका उलटी बाजूको फिरती है, तब उसे चाहिए था कि वह उस नलिका को छोडकर उड़जाए; फिर (उसको लगता है कि अगर यह नलिका छोड दी, तो वह गिर पडेगा या मरेगा) उसके मनकी आशङ्काका समाधान नहीं होता। उसके बाद वह व्यर्थ ही अपनी गर्दन इधर उधर करता है और सकुची हुई छाती से वह नलिका को पाँवके तलुवे से दबाकर दृढता के साथ पकड़के रखता है। पीछे वह मनमें विचार करता है कि मैं सचमुच बांधा या जकड़ा गया हूँ; ऐसी कल्पना के चक्कर में वह पड़ता है फलस्वरूप वह अपने मुक्त चवडेको अधिकाधिक फँसाता है। इस प्रकार बिना किसी कारण जकड़े हुए उस तोतेको किसीने बाँधा है ? ऐसी परिस्थितिमें उसे अगर उस जगहसे खींचा गया तो वह नलिका को किसी भी हालतमें नहीं छोडता। सारांश, एक, जिसने अपने संकल्प (देहाभिमान) को बढ़ाया है, वह स्वयं अपना शत्रु है ओर दूसरा, जो मिथ्या देहका अभिमान नहीं रखता, वह आत्मज्ञानी कहलाएगा। "

विश्व रचना के सनातनत्व के बारेमें ज्ञानदेव कहते हैं कि :—

" हे उपजे आणि नाशे । तें मायावशें दिसे ॥
येऱ्हवीं तत्त्वतां वस्तु जे असे । ते अविनाश चि ॥ (ज्ञा. २/१०५)

केवल भ्रान्तिके कारण जन्म और मृत्यु का हम अनुभव करते हैं । वस्तुतः वस्तु (आत्मा) जो है वह अविनाशी ही है । "

विषय रूप विष से व्याप्त बुद्धि परमार्थ को ग्रहण करनेमें असमर्थ होती है । जैसे :—

" विषय विषाचा पडिपाडू । गोड परमार्थ लागे कडू ॥
कडु विषय तो गोडू । जीवासि जाहला ॥ (ज्ञा. १०/१५९)

विषयरूप विषकी इतनी महान् शक्ति है कि वास्तवमें लाभदायक परमार्थ, विषयोंकी बाधा के कारण कडुआ लगता है; और स्वभावतः कडुअे शब्दादि विषय जीव को अच्छे लाभदायक लगते हैं । "

अहंकार के प्रभावका वर्णन करते हुए श्री ज्ञानदेव कहते हैं :—

" नवल अहंकाराची गोठी । विशेषें न लगे अज्ञाना पाठीं ॥
सज्ञानाचे झोंबे कंठीं । नाना संकटीं नाचवी ॥ (ज्ञा. १३/८२)

अहंकारकी बात तो कुछ विचित्र ही है, वह यह है कि अहंकार खासकर अज्ञानी के पीछे नहीं पड़ता; बल्कि (तथाकथित) ज्ञानी पुरुष का गला पकड़ बैठता है और अनेक प्रकारके संकटोंकी खाईमें उसे डाल देता है । "

ज्ञानी साधुओं की विरागी वृत्ति की झलक देखिए :—

" जे ज्ञानगंगे नाहाले । पूर्णता जेऊनि धाले ॥
जे शांतिसि आले । पालव नवे ॥ (ज्ञा, ९/१९०)

जो ज्ञानरूपी गंगाजीमें नहा चुके हैं, जो पुरुष पूर्णतारूपी भोजन करके तृप्त हो गये हैं, वे मानों शान्तिरूपी बेली के नूतन कोमल अङ्कुर उग आये हैं । "

अब, विहित कर्म ही ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ सेवा है, यह भाव स्पष्ट करते हुए आप कहते हैं कि :—

" तया सर्वात्मका ईश्वरा । स्वकर्म कुसुमांची वीरा ॥
पुजा केली होय अपारा । तोषालागीं ॥ (ज्ञा. १८/९१७)

हे वीरवर अर्जुन ! उस सर्वात्मक ईश्वरकी पूजा स्वकर्मरूपी पुष्पोंसे की जाय, तो वह पूजा ईश्वरके अपार सन्तोष को कारणीभूत होती है । "

देव और भक्त के एक अनूठे प्रसंग के वर्णन को देखिए । भगवानने अर्जुन को कैसे अपनाया ?

" हृदया हृदय एक जालें । ये हृदयींचे ते हृदयीं घातलें ॥
द्वैत न मोडितां केलें । आपणां ऐसे अर्जुना ॥ (ज्ञा. १८/१४२१)

[वाचा या बुद्धिको अगम्य, जो ब्रह्म, अर्जुन को उसका अनुभव कराने के लिए भगवानने आलिङ्गन का निमित्त किया] तब उस समय भगवानका हृदय और अर्जुन का हृदय एक हो गया । भगवानने अपने हृदय का बोध अर्जुन के हृदयमें भर दिया । देव और भक्तके द्वैत को न बिगाड़कर भगवानने अर्जुन को गले लगाकर अपनाया ! "

ज्ञानेश्वरी शान्तरस प्रधान है सही किन्तु इसके अन्तर्गत अन्य रसोंका (भयानक, रौद्र, वीर अद्‌भूत आदि) भी समावेश हुआ है । ग्यारहवें अध्याय के आरम्भमें ज्ञानदेव कहते हैं :—

" जेथ शातांचिया घरा । अद्‌भुत आला आहे पाहुणेरा ॥
आणि येरांही रसा पांतिभरां । जाहला मानु ॥ (ज्ञा. ११/२)
अहो वधुवरांचिये मिळणीं । जैंसी वराडियां ही लुगडीं लेणीं ॥
तैंसे देशियेचां सोकासणीं । मिरविले रस ॥ (ज्ञा. ११/३)

शान्तके घर अद्‌भुत रस अतिथी है और अन्य रसोंको भी इनके बीच स्थान मिला है । अहो ? बिवाह के समारोह में जिस प्रकार बारातियों को भी वस्त्र भूषण आदि भेंट किये जाते हैं उसी प्रकार अन्य रसोंको भी मराठी भाषारूपी शिबिकामें यत्रतत्र विराजमान होनेका अवसर प्राप्त हुआ है । "

इस प्रकार हम कितने भी उद्धरण दे दें तथापि हमारा कभी समाधान नहीं होगा । इसके लिए समस्त ज्ञानेश्वरी अन्तरङ्गको ही समझ लेना आवश्यक है । ज्ञानदेव गीता को जीवन की गाथा समझते थे ।

अन्तमें, इस कविकी विश्व-कल्याण की भावना को देखिए :—

" आतां विश्वात्मकें देवें । येणे वाग्यज्ञें तोषावें ॥
तोषोनि मज द्यावें । पसायदान हें ॥

जे खळाची व्यंकटी सांडो । सत्कर्मी रतिवाढो ॥
भूतां परस्परें पडो । मैत्र जीवांचें ॥
दुरितांचें तिमिर जावो । विश्व स्वधर्म सूर्ये पाहो ।
जो जें वांछील तो तें लाहो । प्राणिजात ॥
वर्षते सकळ मंगळीं । ईश्वर निष्ठांची मांदियाळी ।
अनवरत भूमंडळीं । भेटतु भूतां ॥
चलां कल्पतरुंचे अरव । चेतना चिंतामणींचे गांव ।
बोलते जे अर्णव । पीयूषांचे ॥
किंबहुना सर्व सुखी । पूर्ण होऊनि तिही लोकीं ।
भजिजे आदि पुरुषीं । अखण्डित ॥
आणि ग्रन्थोपजीविए । विशेषीं लोकीं इयें ।
दृष्टादृष्ट विजये । हों आवे जी ॥
येथ म्हणे विश्वेश रावो । हा होईल दान प ावो ।
येणें वरें ज्ञानदेवो । सुखिया जाहला ॥

ज्ञानदेव, कृपा प्रसाद का वरदान माँगते हुए, कहते हैं कि अब विश्वरूप देव इस वाग्यज्ञसे सन्तुष्ट हों। मुझे कृपाका वह प्रसाद दें जिससे कि दुष्ट लोगोंके कुटिलपन का नाश हो और उनमें सत्कर्म के प्रति चाव उत्पन्न हो। सारे प्राणिमात्र परस्पर गहरी मित्रता के भावसे वर्ताव करें। पापरूपी अन्धकार नष्ट हो और स्वधर्म सूर्यका उदय हो। प्राणीमात्र जो कुछ चाहता है वह उसे मिल जाए। ईश्वरमें अटूट श्रद्धा रखनेवालोंका वह समूह प्राप्त हो जो समूचे कल्याण की वर्षा करते रहे। इस भूतलपर समस्त प्राणिमात्र को निरन्तर सुख प्राप्त हों। चलनेवाले कल्पवृक्षोंके ये बगीचे, चिन्तामणि के सजीव ग्राम और अमृतवाणी की वर्षा करनेवाले ये (सज्जन) सागर हैं, जो कलङ्करहित चन्द्रमा हैं और जो उष्णता रहित सूर्य हैं ऐसे सज्जन सबको हमेशा प्रिय हों; और क्या कहें? तीनों लोक (स्वर्ग, मृत्यु, पताल) सम्पूर्ण सुखसे पूर्ण होकर आदि पुरुष की निर्बाध सेवा करें और हे देव ? इस लोकमें विशेषतः यह ग्रन्थ जिनका जीवन बन गया है, जिनको अतीव प्रिय हो रहा हो, उनको चाहिए कि वे इहलोक और परलोक के सुखदुःख के अनुभवपर विजय प्राप्त करे। इसके अनन्तर विश्वके प्रभु निवृत्तिनाथने कहा कि वह यही कृपा-प्रसाद हो। इस वरदान से श्री ज्ञानदेव नितान्त प्रसन्न हो गये।"

सन्दर्भ ग्रन्थोंकी सूची ।

	ग्रन्थ	लेखक का नाम
१	पांच संत कवि	श्री शं. गो. तुळपळे
२	ज्ञानेश्वर नामदेवांचा काल मराठी वाङमयाचा इतिहास प्र. खण्ड	,, ल. रा. पांगारकर
३	ज्ञानेश्वरी सर्वस्व	,, न. चि. केळकर
४	ज्ञानेश्वर चरित्र	,, पारख
५	श्री नामदेव रायाची सार्थ गाथा भाग १ व २	,, प्र. सि. सुबंध
६	सन्त वाङमयाची सामाजिक फलश्रुति	,, गं. बा. सरदार
७	ज्ञानेश्वरांचे तत्त्वज्ञान (तौलनिक)	,, शं. दा. पेंडसे
८	महाराष्ट्रीय संतवाङ्मय व जीवन	,, म. अ. करंदीकर
९	महाराष्ट्राचा सांस्कृतिक इतिहास	,, शं. दा. पेंडसे
१०	वारकरी पंथाचा इतिहास	,, शं. वा. दाण्डेकर
११	सार्थ ज्ञानेश्वरी	,, शं. वा. दाण्डेकर
१२	ज्ञानेश्वर व ज्ञानेश्वरी	,, न. र. फाटक
१३	श्री ज्ञानेश्वर दर्शन भाग १ व २	,, न. ना. देशमुख
१४	देवभक्त चरित्रमाला श्री ज्ञानेश्वर चरित्रग्रंथ विवेचन	,, ल. रा. पांगारकर
१५	कौशिक व्याख्यान माला ज्ञानेश्वर व ज्ञानेश्वरी आक्टोबर १९५३ ज्ञानेश्वरीचा अभ्यास १९५४	,, शं. दा. पेंडसे
१६	श्री महासाधु ज्ञानेश्वर महाराज यांचा काल-निर्णय व संक्षिप्तचरित्र	,, ह. भ. प. भिंगारकर बुवा
१७	ज्ञानेश्वरी अंतरंग	,, रा. द. रानडे
१८	ऋग्वेदांतील भक्तिमार्ग	,, ह. दा. वेलणकर
१९	महाराष्ट्र कविचरित्र भा ६ (ज्ञानदेव)	,, ज. र. आजगांवकर
२०	गीता हृदय	,, साने गुरुजी
२१	श्री ज्ञानदेव (चरित्र ग्रंथ तत्त्वज्ञान)	,, शं. वा. दाण्डेकर
२२	श्री ज्ञानेश्वरी विजय अध्याय १२	,, निरंजन माधव
२३	ज्ञानेश्वर वचनामृत	,, रा. द. रानडे
२४	श्री ज्ञानेश्वर (चरित्रात्मक निबन्ध)	,, मा. दा. आळतेकर
२५	हरपाठ, अमृतानुभव, ज्ञानदेव, नामदेवअभंग आदि	